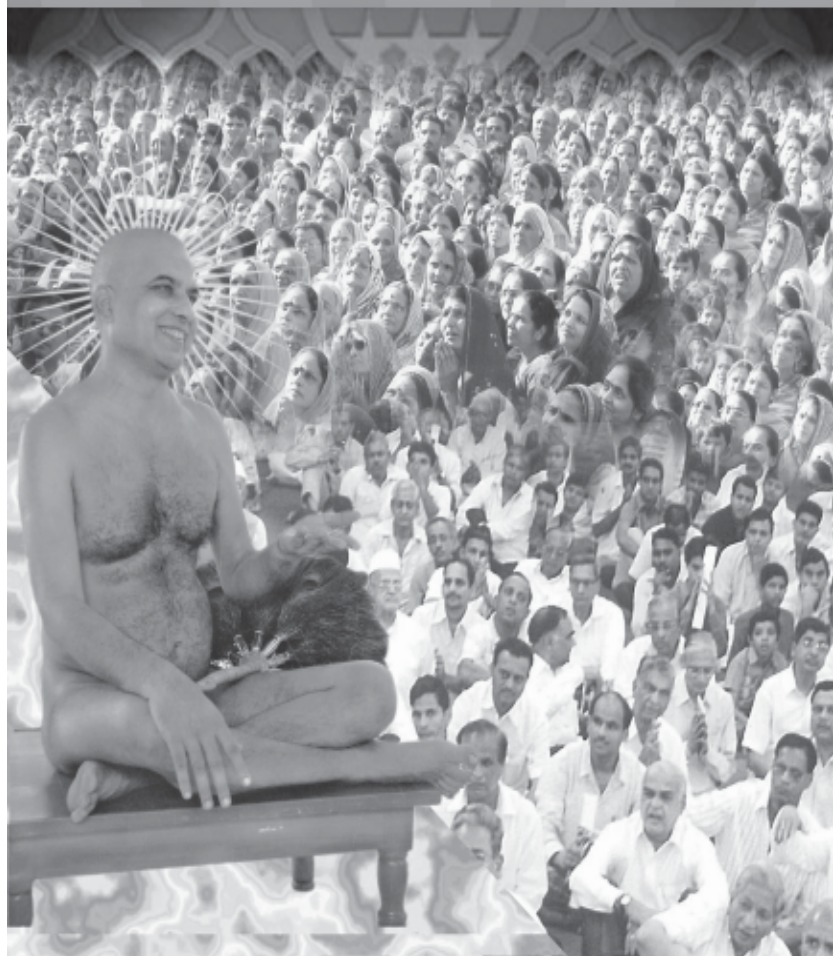


आध्यात्मिक धर्म प्रवचन



गणाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज

प्रसंग:- प.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज के
“राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव वर्ष” समापन अवसर पर

कृति:- आध्यात्मिक धर्म - पर्यूषण पर्व (धर्म के दश लक्षण)

प्रवचन:- प.पू. राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज

प्रेरणा:- पू. आर्यिका श्री १०५ विशिष्ट श्री माताजी,

संकलन:- पू. आर्यिका श्री १०५ विबोध श्री माताजी,

संपादन:- पू. आर्यिका श्री १०५ विविक्त श्री माताजी,

संस्करण:- प्रथम, २००८, बोरीवली, मुंबई (महा.)

प्रतियाँ:- १०००

पुण्यार्जक:- श्री प्रद्युमन मोतीलाल जी आंजनिया बोरीवली, मुंबई (महा.)

पुनः प्रकाशन हेतु:-

प्रकाशक:- श्री सम्यग्ज्ञान दिग. जैन विराग विद्यापीठ
बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

“सब कुछ दिया है तुमने”

गुरु ही जीवन का साज है, गुरु ही जीवन का श्रृंगार।
गुरु ही जीवन का आधार है, गुरु बिन सब निःसार।।

गुरु उपकारों की कथा को कहूं मैं कहाँ तक, शब्द पड़ रहे हैं बौने, अधर भी है सहमें। पर भक्ति का शैलाब जहाँ हो उमड़ा, वहाँ बिन कहें ही बहुत कुछ कहा सा लगता।

जिनके उपकारों की यशोगाथा को गाना मेरे लिए संभव सा प्रतीत नहीं होता ऐसे चारित्र के उत्कृष्ट हिमालय, कवियों के कवि महाकवि, पर के मनोभाव को यथा रीति से जानने वाले, परमोपकारी, परम श्रद्धेय प. पू. राष्ट्र संत गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज के अंतस से उत्पन्न दस धर्म रूपी मधुर पुष्पों का हार एक अदभुत हार है जो इसे धारण कर लेता है कर्म रूपी शत्रु भी उससे हार जाते हैं। पूज्य आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी की प्रेरणा से इस मधुर सुंदर पुष्पों का संकलन आर्यिका श्री विबोध श्री माता जी तथा संपादन कार्य आर्यिका श्री विविक्त श्री माता जी ने किया। पूज्य माताजियों की गुरु भक्ति व श्रुत सेवा के प्रति लगन अत्यंत प्रशंसनीय है।

पूज्य गुरु की छत्रछाया जिसे प्राप्त हो जाए वहाँ ऐसी अनेकानेक कलाओं का प्रादुर्भाव सुयोग्य शिष्यों में सहजता में ही हो जाता है।

पूज्य गुरुवर के “राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव वर्ष” की समापन बेला में मेरी भगवान से एक ही प्रार्थना है कि मेरे गुरु आकाश की ऊँचाईयों को छुये, इतने ऊपर उठे, कि उठते-उठते हम सबको साथ लेकर सिद्ध शिला पर जा विराजे। निरंतर आरोग्य लाभ हो, व दीर्घायु हो।

अंत में परम पूज्य विमल कीर्ति, आचार्य गौरव, राष्ट्र संत, गणाचार्य गुरुवर श्री १०८ विराग सागर जी महाराज के पावन चरणों में त्रय भक्ति पूर्वक कोटिशः नमन् नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

गुरु कमल निवासिनी - पू. आर्यिका विभूति श्री माताजी

“संपादकीय”

पाश्चात्यता की ओर उन्मुख आज के भौतिक परिवेश पर दृष्टिपात करें तो यह दुनिया मात्र एक दिखावा बन कर रह गयी है। नैतिक व धार्मिक मूल्यों का अहर्निश पतन होता जा रहा है ऐसे वातावरण में, अपनी धार्मिकता, संस्कृति व नैतिक मूल्यों के अस्तित्व को कायम रखने में पर्वों की बड़ी अहम् भूमिका होती है। यह पर्व हमारे जीवन में नव जाग्रती का शंखनाद करते हैं, हमें धार्मिकता की ओर अभिमुख करते हैं, आत्म विकास के नित नये सोपान प्रदान करते हैं। उन पर्वों की श्रृंखला में 'पर्वराज - पर्यूषण' का बड़ा ही महत्व है, पर्वों में सर्वप्रधान, सर्वमान्य व सर्वश्रेष्ठ होने से इसे 'पर्वराज' संज्ञा प्राप्त है। 'पर्यूषण' दस दिनों में श्रावक को आत्म-विकास के दस सूत्र दस धर्मों के रूप में प्राप्त होते हैं। कहा जाता है - 'संत न होते जगत में, तो जल जाता संसार'

संतों, पू. आचार्य भगवन्तों की कृपा से ही आज धर्म - संस्कृति जीवंत है। यदि संत न होते तो आज जो कुछ भी धार्मिकता शेष रह गई है वह भी न होती। उन्हीं परम उपकारी पू. आचार्य भगवन्तों की श्रृंखला में, आचार्यों में भी श्रेष्ठ ऐसे उपसर्ग विजेता, अध्यात्म योगी, श्रमण रत्नाकर, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी महाराज हैं। जो अपनी आकर्षक, धारा प्रवाह, सरल-सुबोध शैली में अपने आत्म घट का अमृत रस हम सभी पर बरसाते हैं। उनकी करुणा, प्राणी मात्र के प्रति दया और सहृदयता अपने आप में अनुपम व अनूठी हैं जो उन्हें आज आचार्यत्व के उत्तुंग शिखर पर ले गई हैं। आपका अनुपम व्यक्तित्व चुंबक की भाँति सबको अपनी ओर खींच लेता है। तथा आपकी ऊँ कार ध्वनि पूर्ण वाणी तीर्थकर की देशना से कम नहीं होती। ऐसे पूज्य उपकारी पू. आचार्य भगवन्त के महान उपकारों को यह सृष्टि युगों-युगों तक गायेगी।

पूज्य आर्यिका श्री १०५ विशिष्ट श्री माता जी की सद्प्रेरणाओं से पूज्य गुरुवर के मुखारविंद से निःसृत इस वाणी के सुमधुर पुष्पों को संकलित करने का परम सौभाग्य पूज्य आर्यिका विबोध श्री माताजी को प्राप्त हुआ तथा मुझे इस कृति के संपादन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। साथ ही पूज्य गुरुदेव सिद्धान्त रत्न, राष्ट्रसंत गणाचार्य श्री १०८ विराग सागर जी का आशीष व निर्देशन भी भरपूर रहा। जहाँ गुरु का हाथ सिर पर हो वहाँ अनाड़ी भी सयाना हो जाता है। गुरु के आशीष में बड़ी शक्ति होती है उसी आशीष की छत्रछाया तले इस कार्य को करने का लघु प्रयास किया, अल्पज्ञान होने से मुझसे

त्रुटियाँ अवश्य हो गई होंगी, पूज्य गुरुदेव मुझे उन त्रुटियों से अवगत कराके दिशा निर्देशन प्रदान करने की कृपा करें। ताकि उनकी पुनरावृत्ति न हो सके।

पूज्य गुरुवर के “राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा महोत्सव” वर्ष की समापन बेला में यही भावना भाती हूँ कि "Your life always fullfil with happiness. Your face always look like a rose & early to early you get "Teerthank-pad" & get salvation" आपका जीवन सदा खुशियों से भरा रहे, आपका चेहरा गुलाब की तरह खिला रहे तथा आप शीघ्र ही तीर्थकर-पद को पाकर मोक्ष-पधारें।”

पूज्य आर्यिका द्वय के प्रति आभार व कृतज्ञता प्रकट करती हूँ जिन्होंने अपनी सदप्रेरणाओं से मेरे कार्य को गति प्रदान की।

अंत में, आत्मनिधि के भंडारी, ज्ञान दिवाकर पूज्य गुरुवर के चरणों में त्रय भक्ति पूर्वक बारंबार कोटिशः नमोऽस्तु- नमोऽस्तु-नमोऽस्तु

दिनांक : १२/८/०८

बोरीवली (वेस्ट), मुंबई

गुरु चरण रज सेविका -पू. आर्यिका विविक्त श्री माताजी

“अनुक्रमणिका”

१.	शाश्वत-पर्वराज	७
२.	कोप शमन से ‘क्षमा धर्म’	१०
३.	‘उत्तम मार्दव’ विनय प्रकाशे	२२
४.	माया तज बन जाओ ‘सरल’	३७
५.	शुचिता से पाओ ‘शौच धर्म’	५०
६.	मधुर वचन से पाओ ‘सत्य-धर्म’ महान	६२
७.	‘संयम’ रतन संभाल	७३
८.	कर्म क्षयार्थं तप्यते इति ‘तपः’	८३
९.	‘त्याग’ ही जीवन का श्रृंगार	९४
१०.	न किञ्चनः इति आकिञ्चनः	१०३
११.	‘बह्मचर्य’ है जगत पूज्य	११५
१२.	आओ मनाएँ क्षमावाणी	१२८

“शाश्वत - पर्वराज”

“पर्यूषण पर्व” जैन धर्म का शाश्वत पर्व है पर्व का अर्थ है जो आत्मा को पुनीत पवित्र करे। पर्व के मुख्य रूप से दो भेद होते हैं

(१) शाश्वत या त्रैकालिक

(२) अशाश्वत या नैमित्तिक

शाश्वत पर्व :- जो पर्व भूत, भविष्य व वर्तमान तीनों ही कालों में अहर्निश चलते रहते हैं, जिनका अस्तित्व त्रिकाल में रहता है, वे शाश्वत पर्व हैं।
उदाहरण-सोलहकारण, दशलक्षण, अष्टान्हिका आदि।

अशाश्वत या नैमित्तिक :-

किसी निमित्त विशेष के कारण होते हैं। इसके भी दो भेद है -

(१) व्यक्ति विशेष से संबंधित

(२) घटना विशेष से संबंधित

व्यक्ति विशेष :- भगवान महावीर जयन्ती, तीर्थकरों के पंचकल्याणक

घटना विशेष :- रक्षा बंधन (यह पर्व ७०० मुनियों पर उपसर्ग होने पर विष्णुकुमार मुनि महाराज के द्वारा रक्षा, उपसर्ग निवारण से संबंधित है।) आदि।

आचार्यों ने इन पर्वों के माध्यम से श्रावक व साधुओं को आत्म साधना व धर्म की उपासना की विधि बतायी। यों तो श्रावक हमेशा पर्वों को नहीं मना पाता, लेकिन तिथियों के माध्यम से उपासना, भक्ति का पुनीत अवसर प्राप्त हो जाता है। “पर्यूषण” शब्द को परिभाषित करते हुए कहा जाता है “परि सर्व प्रकारेण उष्यन्ते - दह्यन्ते कर्माणि यस्मिन् पर्वणि इति पर्यूषण पर्व।” चारों ओर से आत्मा को तपाकर कर्मों को खपाये वह पर्यूषण पर्व है। पर्यूषण शब्द - परि उपसर्ग पूर्वक अण प्रत्यय के साथ ऊष्ण शब्द के मिलने से पर्यूषण शब्द बना है।

दिगंबर व श्वेताम्बर दोनों में इस पर्व की बड़ी मान्यता है। श्वेताम्बरों में यह पर्व

८ दिन का मनाते हैं तथा उनमें यह पहले से ही प्रारंभ हो जाता है दिगंबरों में दश दिन का मनाते हैं, इसीलिए दशलक्षण कहा जाता है।

जैन इतिहास के अनुसार जब काल परिवर्तन होता है तो उत्सर्पिणी काल के बाद अवसर्पिणा, अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी काल आता है यह क्रम निरंतर चलता रहता है तथा असंख्यात अवसर्पिणी काल बीतने के बाद एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है वर्तमान में यही काल प्रवर्तमान है।

अवसर्पिणी काल का जब प्रारंभ होने वाला होता है तब ७ - ७ दिन तक ७ प्रकार की सुवृष्टियाँ होती है। इस प्रकार कुल ४९ दिन तक सुवृष्टि होती है। दिगंबर जैन दर्शन में अवसर्पिणी काल का प्रारंभ श्रावण वदी एकम से प्रारंभ होता है। श्रावण वदी एकम से भादों सुदी पंचमी तक ४९ दिन जो जाते हैं। सावन के ३० दिन वदी के १५ दिन व सुदी के ४ दिन - $30 \square 15 \square 4 = 49$ ५०वें दिन धर्म का दिन होता है। सौधर्म इंद्र ने प्रलय के समय जिन ७२ जोड़ों को विजयार्थ की गुफाओं में छिपाया था, धर्म स्थापन होते ही वह सर्वप्रथम उन ७२ जोड़ों को बाहर लाता है, १० दिन तक धर्म की आराधना करता है। आत्मा के गुणों की आराधना करता है। आत्मा के दस लक्षणों, दस गुणों, दस धर्मों का जो वर्णन करे वह 'दसलक्षण पर्व' है। हिन्दु संप्रदाय व अन्य दर्शनों में भी किसी न किसी रूप में इन दस धर्मों का उल्लेख मिलता है। बौद्ध, सिक्ख, ईसाई सभी ने इसे स्वीकारा है।

ये 'दसलक्षण पर्व' प्रत्येक वर्ष की तीन शाखाओं में मान्यता प्राप्त है परंतु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार भाद्रपद मास में ही सामाजिक स्तर पर सामूहिक रूप से उत्साह सहित इस पर्व को मनाने की प्रथा वर्तमान में प्रचलित है। भाद्रपद माह में पर्व साधना का मुख्य कारण -

अहो भाद्रपदाख्योऽयं, मासोनेक व्रताकरः।

धर्म हेतु परोमध्येऽन्यमासानां नरेन्द्रवत् ॥

(मल्लिनाथ पुराण)

जिस प्रकार मनुष्यों में चक्रवर्ती श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार १२ मासों में भाद्रपद मास श्रेष्ठ होता है। कारण यह है कि यह मास अनेक व्रतों का आकर है। एवं धर्म साधना करने में उचित साधनों से संपन्न है। अतएव यह नाम भी सार्थक है - भाद्रपद यानि कल्याण का परम स्थान। धर्म शान्ति व मनुष्यता के साथ जीवन जीने के लिए होता है।

यदि आप इसे परमार्थ से जोड़े तो यह मुक्ति भी प्रदान करा सकता है। धर्म' के ये दस लक्षण विभिन्न शास्त्रों में उल्लेखित है। यथा -

धर्मः सेव्यः क्षान्तिः, मृदुत्वमृजुता च शौचमथ सत्यम्।

आर्किचन्यं बह्य, त्यागश्च तपश्च संयमश्चेति ॥

(अमृतचंद्राचार्य, पुरु.सिद्धियुपाय - २०४)

क्षमा, मार्दव, निष्कपट, पवित्रता, संयम, तप, त्याग, अपरिग्रह, बह्यचर्य। ये दश आत्मधर्म प्रत्येक के लिए मंगलकारी, विश्वशांतिकारी, राष्ट्र उन्नायक, समाज कल्याणप्रद, आत्मविशुद्धि कर्ता, एवं परं निःश्रेयश के श्रेष्ठ साधन हैं। पू. आचार्य कार्तिकेय स्वामी कहते हैं -

एदेदहप्पयारा, पावकम्मस्स णासिया भणिया।

पुण्णस्सय संजणया, पर पुण्णत्थंण कादव्वा।।

(कार्तिकेयानु प्रेक्षा)

ये धर्म दश प्रकार के पाप कर्मों के नाशार्थ और पुण्य कर्मों के संचनार्थ आचार्यों द्वारा कहे गये हैं, परंतु मात्र पुण्य प्राप्ति का ही ध्येय नहीं करना चाहिए। कारण कि ये धर्म मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए प्रधान कारण है।

पर्युषण पर्व अर्थात् “अपनी आत्मा के पास रहना” इन दिनों में धर्मानुरागी भाई व्रत, नियम, संयम धारण करते हैं। इसलिए ये दस धर्म के दिन है। ये धर्म शाश्वत होते हैं। अर्थात् कभी नष्ट नहीं होते आत्मा का स्वभाव है।

अतः भव्य बंधुओं! हमें सदैव दस धर्मों को, आत्मा के एक-एक गुण की विशेषताओं को चिंतन करते हुए धारण करना चाहिए।



कोप शमन से “क्षमा धर्म”

(उत्तम क्षमा)

अप्पा णंपि य सरणं, खमादि भावेहि परिणदो होदि ।

तिव्व कसाया विट्ठो, अप्पाणं हणदि अप्पेण ।। का. अ. ३१

अर्थ :- आत्मा को उत्तम क्षमा आदि भावों से युक्त करना भी शरण है, जिसकी कषाय तीव्र होती है, वह स्वयं अपना ही घात करता है ।

तीर्णो भवार्णवस्तैर्य क्षामयन्ति क्षमयन्ति च ।

क्षाणमयन्ति न क्षमयतां ये ते दीर्घा जवन्जवाः ।। सा.धर्मा.

अर्थ :- जो पुरुष अपने विरोधकों को क्षमा करते हैं और दूसरों से अपने अपराधों की क्षमा याचना करते हैं वे ही भव्य मानव संसार समुद्र से पार हो जाते हैं परन्तु जो क्षमा माँगने पर भी क्षमा नहीं करते हैं और अपने कालुष्य भाव को नहीं छोड़ते हैं वे दीर्घ संसारी होते हैं ।

शरीरस्थिति हेतुमार्गणार्थं परकुलान्युपगच्छतो

भिक्षोर्दुष्ट जनाक्रोश प्रहसनाव-

-ज्ञाताऽनशरीर व्यापादनानीनां

संनिधाने कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा । स. सि. ९/६/४१२/४

अर्थ :- शरीर की स्थिति के कारण की खोज करने के लिए परकुलों में जाते हुए भिक्षु को दुष्टजन गाली-गलौज करते हैं, उपहास करते हैं, तिरस्कार करते हैं मारते-पीटते हैं और शरीर को तोड़ते-मरोड़ते हैं तो भी उनके कलुषता का उत्पन्न न होना क्षमा है ।

यः क्षाम्यति क्षमोऽप्याशु प्रतिकतु कृतागसः ।

कृतागसं तमिच्छन्ति क्षान्तिपीयूष संजुषः ।। अन. ध. /६/५

अर्थ :- अपराधियों का शीघ्र ही प्रतिकार करने में समर्थ रहते हुए भी जो पुरुष अपने उन अपराधियों के प्रति उत्तम क्षमा धारण करता है वे क्षमारूपी अमृत का समीचीनतया सेवन करने वाले कहे जाते हैं ।

उत्तमे तु क्षणं कोपो, मध्यमे घटिका द्वयं ।

अधमे स्यादहोरात्रं चाण्डालो मरणान्तकः ।। स. श्लो.स.

अर्थ :- उत्तम पुरुष में क्रोध क्षणभर के लिये होता है, मध्यम पुरुष में दो घड़ी के

लिये, अद्यम पुरुष में दिन-रात के लिये और चाण्डाल में मरणान्तक होता है ।७

सिल पुढविभेद धूली जल राइ समाणओ हवे कोहो । जी. का.

अर्थ :- पत्थर की रेखा, पृथ्वी रेखा, धूली रेखा और जल रेखा के समान क्रोध ४ प्रकार का है

कोहो य कोव रोसो य अक्खम संजलण कलहवड्ढी य ।

झंझा दोस विवादो दस कोहेयट्ठिया होंति ।। जय धवला

अर्थ :- क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, वृद्धि, झंझा, दोष, विवाद क्रोध के १० पर्यायवाची नाम हैं।

पावं खवइ असेसं खमायपडिमंडिओ यह मुणिपवरो ।

खेयर अमरणराणं पसंसणीओ धुवं होई ।। भा. पा. १०८

अर्थ :- जो मुनिवर क्रोध के अभाव रूप क्षमा करि मंडित है सो मुनि समस्त पापकूं क्षय करै हैं, बहुरि विद्याधर देव मनुष्यकरि प्रशंसा करने योग्य निश्चयकरि होय है।

हे भव्य! विष की वेदना को मंत्र के द्वारा, खेतों को अतिवर्षा होने से, कमल वन को पाल के पड़ने से नष्ट किया जाता है, उसी तरह क्षमा और शांति रूपी जल से क्रोधाग्नि को क्षय करें।

बंधुओं! क्षमा के विषय में बड़ी सुंदर बात नीति श्लोक में कही गयी है -

पूजा कोटि समं स्तोत्रं, स्तोत्रं कोटि समं जपः ।

जप कोटि समं ध्यानं, ध्यान कोटि समं क्षमाः ।।

करोड़ों पूजाओं के बराबर एक स्तोत्र है, करोड़ों स्तोत्रों के बराबर एक जप है, करोड़ों जप के बराबर एक ध्यान है और करोड़ों बार किये ध्यान के बराबर एक बार की गई क्षमा है।

बंधुओं! 'क्षमा' वह शीतल जल है जो भयानक दावानल को भी शांत कर देता है। 'क्षमा' वह अमृत है जो कालकूट विष को भी प्रभाव हीन बना देता है। 'क्षमा' वह फुलवारी है जिसमें नाना गुण रूपी पुष्प खिला करते हैं। 'क्षमा' वह औषधी है जो क्रोध, बैर, उत्तेजना, जैसे रोगों का शमन करती है। और प्राणी को निरोगता प्रदान करती है।

'क्षमा' वह सुगंधि है जो सर्वत्र फैल जाती है और वातावरण को सुगंधित बना देती है। 'क्षमा' एक ऐसा आभूषण है जो वीरों (मोक्षमार्गियों) की शोभा को बढ़ाता है। 'क्षमा' वह दिव्य अस्त्र है जो क्रोध, बैर आदि राक्षसों का प्राणान्त कर देता है। 'क्षमा' एक ऐसा चिंतामणी रत्न है जो मुक्ति को भी प्रदान करा देता है अर्थात् इसका आलंबन लेने वाला मुक्ति वधू का प्राण वल्लभ बन जाता है। ज्ञानियों का आभूषण 'क्षमा धर्म' कहा गया है। नीति श्लोक में भी यही बात कही है -

नरस्या भरणं रूपं, रूपस्या भरणं गुणः।

गुणस्याभरणं ज्ञानं, ज्ञानस्या भरणं क्षमाः।।

मनुष्य का आभूषण रूप है, रूप का आभूषण गुण है, गुण का आभूषण ज्ञान है और ज्ञान का आभूषण क्षमा है।

'क्षमा' शब्द के साथ जुड़ा हुआ 'उत्तम' शब्द अपने आप में बहुत बड़ा महत्व रखता है। उत्तम अर्थात् 'सर्वश्रेष्ठ' यह तो सामान्य लौकिक अर्थ हुआ। इसके अतिरिक्त जब हम पारमार्थिक अर्थ पर पहुँचते हैं तो 'उत्तम' शब्द का अर्थ बहुत गहरा है। सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ में बताया गया है कि मैं जिज्ञासु शिष्य पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज के समक्ष पहुँच जाता है और विनय पूर्वक प्रश्न करता है कि हे भगवन् । 'क्षमा' शब्द के साथ उत्तम विशेषण क्यों जोड़ा गया ? तो परिहार करते हुए पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज कहते हैं - सम्यग्दर्शन की अनुवृत्ति के लिए अथवा मिथ्यात्व के परिहार के लिए उत्तम विशेषण जोड़ा गया है, जब उत्तम शब्द क्षमा के साथ जुड़ जाता है तो वह क्षमा धर्म बन जाता है। कहने का तात्पर्य है कि आत्मा से जुड़ी क्षमा 'उत्तम-क्षमा' है। अंतरात्मा का धर्म उत्तम विशेषण से युक्त है। निश्चय उत्तम क्षमा के बारे में कहा है -

बधे सत्यमूर्तस्य परमब्रह्मरूपिणो ममापकार हानिरिति

परम समरसीभाव स्थितिरुत्तमा क्षमा।

बध होने से अमूर्त परम ब्रह्मरूप ऐसे मुझे हानि नहीं होती ऐसा समझकर परम समरसी भाव में स्थिर रहना 'उत्तम-क्षमा' है।

परंतु क्षमा को समझने के पूर्व उसके प्रतिरोधी क्रोध को समझना अनिवार्य है -सुभाषित रत्नावली ग्रंथ में पू. आचार्य श्री सकल कीर्तिजी महाराज कहते हैं -

धन धान्यादिवस्त्वर्थं कुटुम्बादिकृतेऽथवा।

वधवन्धादिके प्राप्ते क्रोधस्त्याज्यो विवेकिभिः।।१४।।

धन धान्यादि वस्तुओं के मिलने अथवा ना मिलने पर कुटुम्बी आदि जनों को बन्धनादिक प्राप्त होने पर विवेकीजनों को क्रोध नहीं करना चाहिए क्योंकि क्रोध रूपी अग्नि के प्रज्वलित हो जाने से संपूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं यहाँ तक कि क्रोध से प्राणी का मरण तक हो जाता है। इसलिए उत्तमक्षमा को धारण करने वाले विवेकीजनों को सर्वप्रथम क्रोध को छोड़ देना चाहिए। पूजन में कहा भी है -

कहिये अयानो वस्तु छीने बांध मार बहुविध करें।

घर ते निकारे तन विदारे वैर जो न धरै।।

उत्तम क्षमा धारी वही हो सकता है जो धन धान्यादि के छीनने पर अथवा प्राप्त न होने पर रस्सी आदि से बाँधने पर, मारने पर, घर से निकाले जाने पर तथा शरीर के छेदन-भेदन करने पर भी क्रोध नहीं करते हैं और अपने आत्म ध्यान में लीन रहते हैं। ऐसे प्राणी ही क्रोध को जीत कर मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं -

क्रोधानलमहादाहः समुत्पन्न शरीरिणाम्।

निर्दहति तपोवृत्तं धर्म द्वैपायनादिवत्।।१५।।

प्राणियों के क्रोध रूपी अग्नि के उत्पन्न होने से चिरकालीन तपश्चर्या और चारित्र सब कुछ द्वैपायनादिक मुनि के समान नष्ट हो जाते हैं।

द्वैपायन मुनि की कथा शास्त्रों में आती है -

सौराष्ट्र देश की प्रसिद्ध नगरी में नेमीनाथ भगवान का जन्म हुआ था। एक दिन बलभद्र और वासुदेव (श्री कृष्ण), भगवान के दर्शन के लिए गिरनार पर्वत पर गये और वहाँ भगवान से विनय पूर्वक एक प्रश्न पूछा कि हे - भगवन्! वासुदेव के पुण्य से प्राप्त द्वारिका नगरी कब तक ठहरेगी। भगवान की दिव्य ध्वनि खिरी - कि मद्यपान के सेवन करने से यदुवंश समूल नष्ट हो जायेगा और यह द्वारिका नगरी बारह वर्ष पर्यन्त द्वैपायन मुनि के संबंध से जलकर खाक हो जायेगी। भगवान के द्वारा यदुवंश नाश तथा द्वारिका का भविष्य सुनकर बलभद्र और वासुदेव द्वारिका आये। उस समय द्वारिका में जितनी शराब थी उसे गिरनार पर्वत के जंगलों में डलवा दिया। उधर द्वैपायन अपने द्वारा द्वारिका का भस्म होना सुन मुनि हो गये और द्वारिका छोड़कर अन्यत्र चल दिये।

बारह वर्ष पूर्ण होने के पूर्व ही द्वैपायन मुनि द्वारिका लौट आये क्योंकि उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि कुछ महीने बढ़ जाने से अभी बारह वर्ष पूर्ण नहीं हुए। द्वारिका आकर गिरनार पर्वत के पास ही कहीं ठहरे और तपस्या करने लगे। पर तपस्या द्वारा कर्मों का ऐसा योग कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। एक दिन की बात है कि द्वैपायन मुनि

आतापन योग द्वारा तपस्या कर रहे थे इसी समय मानों पापकर्मों द्वारा प्रेरित हुए यादवों के कुछ लड़के गिरनार पर्वत से खेल कूद कर लौट रहे थे। रास्ते में इन्हें बहुत जोर से प्यास लगी। यहाँ तक कि वे इतने बैचेन हो गये, कि उनके लिए घर तक जाना मुश्किल हो गया। आते-आते उन्हें पानी से भरा एक गड्ढा दिखाई पड़ा। पर वह पानी नहीं था किंतु बलभद्र ने जो शराब किकवा दी थी वही बहकर उस गड्ढे में एकत्रित हो गई थी। इस शराब को ही उन यदुवंशी लड़कों ने पानी समझ कर पी लिया। शराब पीकर थोड़ी देर हुई होगी कि शराब ने उन पर अपना रंग जमाना शुरू कर दिया। नशों से ये सुध-बुध भूलकर उन्मत्त की तरह कूंदते-फांदते जाने लगे।

रास्ते में उन्होंने द्वीपायन मुनि को ध्यान करते देखा। मुनि की रक्षा के लिए बलभद्र ने उनके चारों ओर एक पत्थरों का कोट बनवा दिया था। एक ओर से उस कोट में आने-जाने के लिए रास्ता भी बना था। शराब के नशे में धुत लड़कों ने मजाक में आ उस जगह को पत्थरों से पूर दिया, तथा अनेक प्रकार से मुनि महाराज का अपमान किया, इन लड़कों की शैतानी का हाल जब बलभद्र को मालूम हुआ तो वे वासुदेव को साथ ले दौड़े-दौड़े महाराज के पास आये परंतु उस समय द्वीपायन मुनि के अंतस में लड़कों द्वारा अपमान किये जाने पर क्रोधाग्नि भड़क उठी थी। और क्रोध उत्पन्न होते ही उनके बायें कंधे से अशुभ तैजस पुतला निकला, यहाँ वासुदेव व बलभद्र ने मुनि महाराज से बहुत-बहुत क्षमा याचना की। परंतु जब क्रोध तीव्रता पर होता है तो व्यक्ति कुछ भी देख नहीं पाता वह विचार शून्य सा हो जाता है। भगवती आराधना ग्रंथ में इसी बात को समझाते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज कहते हैं -

जध करिसयस्स धणं वरिसेण समज्जिदं खलं पत्तं।

इहदि फुलिंगो दित्तो तध कोहग्गी समणसारं।।१३६१ भ.आ.।।

जैसे चिनगारी एक वर्ष के श्रम से प्राप्त खलिहान में आये किसान के धान्य को जला देती है उसी प्रकार क्रोध रूपी आग श्रमण के जीवन भर के उपाजित पुण्य धन को जला देती है। तथा

जध उग्गविसो उरगो दण्भतणंकुरहदो पकुप्पंतो।

अचिरेण होदि अविसो तध होदि जदी वि णिस्सारो।।१३६२ भ.आ.।।

जैसे उग्र विषवाले सर्प को घास के एक तिनके से मारने पर वह अत्यंत रोष में आकर उस तिनके पर अपना विष वमन करके तत्काल विष रहित हो जाता है उसी प्रकार यति भी क्रोध करके अपने रत्नत्रय का विनाश करता है और शीघ्र ही निस्सार हो जाता है।

एक दार्शनिक ने कहा भी है -

आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

"Anger is blind. A person who is filled with Anger can't see any thing & can't think any thing".

क्रोध व्यक्ति को अंधा बना देता है फिर व्यक्ति न कुछ देख पाता है न ही कुछ विचार पाता है। अशुभ तैजस निकलते ही मुनि महाराज ने बलभद्र व वासुदेव को दो अंगुलियाँ दिखायी। और देखते ही देखते सारी द्वारिका धू-धू करके जल गई और सारी द्वारिका को भस्म कर वह पुतला उन्हीं महाराज के शरीर में प्रवेश कर गया और उनकी भी मृत्यु हो गई। मुनिराज के दो अंगुलियों के संकेतानुसार मात्र बलभद्र और वासुदेव ही शेष रह गये।

कहने का तात्पर्य यह है कि क्रोध के वशीभूत होकर प्राणी सब कुछ गवां देता है। यहाँ तक कि प्राण भी गवा देता है। पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं -

पूर्व शोषयते गात्रं क्रोधाग्निः प्रकटीस्थितः।

पश्चादन्यानपि दद्यात् दुःख शोकादि दुर्गतिम् ॥१६॥

जिस प्रकार जलता हुआ कोयला हाथ पर रखकर दूसरे पर फेंका जाए तो वह दूसरे को जलाये अथवा न भी जलाये परंतु आपका हाथ नियम से जलेगा ही। उसी प्रकार आत्मा में क्रोध रूपी अग्नि के जलने पर आत्मा के सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। आपके क्रोध से कोई प्राणी ध्वंस हो न हो। इस प्रकार क्रोधी प्राणी क्रोध के द्वारा इस भव में सर्वस्व हरण कराया जाता है। यह क्रोधाग्नि पहले शरीर को सुखाती है पश्चात् परभव में दुःख और शोक देने वाली तथा दुर्गति को प्राप्त कराती है।

तावत्तपो व्रतं ध्याने स्वस्थं चित्तं दयादिकं।

यावत्क्रोधो न जायेत तस्मात्क्रोपं व्यजेन्मुनिः ॥१७॥

तब तक ही मनुष्य तपवान, व्रतवान, ध्यानवान, स्वस्थचित्त तथा दयावान हो सकता है जब तक उसके क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित नहीं हुई है। अर्थात् क्रोध उत्पन्न होने का कोई कारण उपलब्ध नहीं हुआ है। लेकिन जैसे ही थोड़े से निमित्त मिलने पर तथा अन्य प्राणी का प्रतिकूल आचरण होने पर क्रोधाग्नि उत्पन्न होती है। वैसे ही क्रोध से युक्त प्राणी के सभी उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं और वह विपरीत आचरण करने लगता है। इसलिए मुनिजनों को अपने व्रत, तप, ध्यानादिक की रक्षा के लिए अवश्य ही क्रोध को छोड़ देना चाहिए। क्रोध के दुष्परिणामों को बताते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज भी कहते हैं -

पूज्जो वि णरो अवमाणिज्जदि कोवेण तक्खणे चव ।

जगविस्सुदं वि णस्सदि माहपं कोहवसियस्स ।।१३६६ भ.आ.।।

पूज्यनीय मनुष्य भी क्रोध करने से तत्काल अपमानित होता है। क्रोधी का जगत् में प्रसिद्ध माहात्म्य भी नष्ट हो जाता है।

हिंस अलियं चोज्जं आचरदि जणस्स रोसदोसेण ।

तो ते सब्बे हिंसालिया दि दोसा भवे तस्स ।।१३६७ भ.आ.।।

क्रोध के कारण मनुष्य लोगों की (प्राणियों) हिंसा करता है उनके संबंध में झूठ बोलता है, चोरी करता है अतः उसमें हिंसा झूठ आदि सब दोष होते हैं। एक दार्शनिक ने कहा भी है -

"Anger is very dangerous its distroy all the virtue of our soul & full fill the life with bad habits which are enemy of our soul"

क्रोध बहुत खतरनाक होता है जो हमारी आत्मा के सभी गुणों को नष्ट कर देता है तथा जीवन को बुराईयों से भर देता है अतः यह हमारी आत्मा का शत्रु है। क्रोध करने वाला वास्तविकता में कमजोर होता है जब वह परिस्थितियों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता तभी वह क्रोध करता है इसलिए कहा गया है कि -

Anger is sign of weakness.

विज्ञान भी कहता है - क्रोध करना बुरा है क्रोध करने से शरीर के अंदर के Hormons & Nervous system पर effect पड़ता है वे Inbalanced हो जाते हैं फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ हो जाती है -

Anger creates lot of diseases like high blood pressure, Heart attack, Brain Hamerage etc.

“क्रोध करने से हाई ब्लड प्रेसर, हार्ट अटैक व ब्रेन हेमरेज जैसी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है।” और सिद्धान्त तो यह कहता है कि क्रोध करने से तीव्र स्थिति, अनुभाग के साथ कर्म बंध होता है। जिसके दुष्परिणाम हमें भव-भवान्तरों में भोगने पड़ते हैं। अतः ज्ञानी विवेकी प्राणियों को क्रोध को नष्ट कर क्षमा भाव धारण करना चाहिए। वही आत्मा का सच्चा हितैषी है। एक बार एक शिष्य ने अपने गुरु से निवेदन किया गुरु जी यदि कोई हमारे दोष कहता है तो क्रोध आना स्वभाविक है उस क्रोध पर विजय किस प्रकार प्राप्त की जाए? तो पू. आचार्य शिवकोटि महाराज उपाय बताते हुए कहते हैं -

जदिदा सवदि असंतेण परो तं णत्थि मेत्ति खमिदव्वं ।

अणुकंपा वा कुज्जा पावइ पावं वरावोत्ति ।। भ.आ. १४१५ ।।

यदि दूसरा व्यक्ति मेरे में अविद्यमान दोष को कहता है तो वह दोष मुझ में नहीं है, अतः उसे क्षमा करना चाहिए क्योंकि असत् दोष कहने से मेरी क्या हानि हुई? अथवा निंदा करने वाले पर दया करना चाहिए बेचारा झूठ बोलकर अनेक दुःख देने वाला पाप भार एकत्र कर रहा है। मेरे दोषों से उसमें दोष उत्पन्न नहीं होते और न मेरे गुणों से ही उसका कोई लाभ होता है प्राणियों के अपने-अपने गुण दोष नियत हैं। उनसे होने वाला सुख-दुःख भी उन्हें ही होता है अतः यह व्यर्थ ही कर्म बंध करता है। ऐसा विचार कर हमें क्षमा धारण करना चाहिए। आगे कहते हैं-

जदि वा सवेज्ज संतेण परो तह वि पुरिसेण खमिदव्वं ।

सो अत्थि मज्झ दोसो ण अलीयं तेण भणिदत्ति ।। १४१६ भ.आ. ।।

यदि दूसरा मेरे विद्यमान दोष को कहता है तब भी क्षमा करना चाहिए क्योंकि वह जिस दोष को कहता है वह मेरे में हैं, वह झूठ नहीं कहता, विद्यमान दोषों को दूसरे यदि न कहें तो वे नष्ट हो जाते हैं, ऐसी बात भी नहीं है। ऐसा विचार कर क्षमा को धारण करो।

‘क्षमा धर्म’ का सुंदर विश्लेषण रङ्घुई कवि ने दसलक्षण पूजन की जयमाला में किया है। रङ्घुई - ग्वालियर नरेश महाराजा सिंधियाँ के राजकवि थे। उनके काव्य चातुर्य से राजा अत्यंत प्रसन्न थे अतः उन्हें वर मांगने को कहा। रङ्घुई कवि ने कहा - महाराज! यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मैं चाहता हूँ कि पर्वत के चारों ओर जैन मूर्तियों का निर्माण हो। इस हेतु राजखजाने से मुझे पर्याप्त सहयोग मिले तथा जब तक पूर्ण निर्माण कार्य न हो जाए तब तक सहयोग मिलता रहे। राजा ने तथास्तु कहा।

गोपाचल पर्वत पर पार्श्वनाथ भगवान की ४२ फुट की पद्मासन प्रतिमा सबसे ऊँची प्रतिमा है। पर्वत के चारों ओर जैन व हिंदु प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। रङ्घुई कवि की जैन धर्म के प्रति जितनी प्रगाढ़ आस्था थी उससे भी अधिक वे आध्यात्मिकता की ओर रुझान रखते थे, उन्होंने दसलक्षण पूजन की जयमाला में लिखा है -

कोपादि रहितां सारां सर्वसौख्यकरां क्षमाम् ।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।। १ ।।

कोपादि से रहित, सारभूत और सब सुखों की खानरूप क्षमा की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक मैं उसकी पूजा करता हूँ। उत्तम क्षमा किसे हो सकती है तो कहते हैं-

कोहेण जो ण तप्पदि सुर णर तिरिएहि कीरमाणे वि ।

उवसगगे वि रउद्दे, तस्स खमा णिम्मला होदि ।। (का. अ. ३९४)

देव, मनुष्य और तिर्यचों के द्वारा घोर उपसर्ग किये जाने पर भी जो मुनि क्रोध से संतप्त नहीं होता, उसके निर्मल क्षमा होती है।

आगे रङ्घुई कवि कहते हैं

उत्तम खम तिल्लोयहँ सारी, उत्तम खम जम्मोद हितारी

उत्तम खम रयणत्तय धारी, उत्तम खम दुग्गइ दुहहारी ।

उत्तम क्षमा क्या है ? अभी तक सभी पर्यूषण पर्वों के माध्यम से हमने जाना कि यह क्षमा तीनों लोकों में सारभूत है, यह जन्म-मरण रूपी उदधि से पार होने के लिए एक साधन है। “उत्तम-क्षमा” रत्नत्रय धारियों को ही हो सकती है। कोई कहे कि श्रावकों को भी उत्तम क्षमा हो सकती है तो बंधुओं! श्रावक, क्षमा को तो जीवन में ला सकता है परंतु उत्तम क्षमा धर्म मात्र निर्गन्ध मुनियों के ही संभव है कैसी भी परिस्थिति निर्मित हो जाए परंतु मुनिजन क्षमा भाव रखते हैं क्रोध नहीं करते, बैर नहीं करते यह बहुत उत्कृष्ट अवस्था है। दूसरों के द्वारा कष्ट दिये जाने पर भी वे विचार करते हैं -

सत्तो वि ण चेव हदो हदो वि ण य मारिदोत्ति य खमेज्ज ।

मारिज्जंतो वि सहेज्ज चेव धम्मो ण णट्ठोत्ति ।। भ.आ. १४१७ ।।

इसने मुझे अपशब्द ही तो कहे हैं मारा तो नहीं है, इस प्रकार उसके न मारने के गुण को चित्त में स्थापित करके वे मुनिजन ‘उसके अपशब्द कहने से मेरा क्या नष्ट हुआ’ अतः क्षमा धारण करते हैं। कोई मारे तो विचार करते हैं इसने मारा ही तो है मेरे धर्म को तो नष्ट नहीं किया।

पुवं सयमुवभुत्तं काले णाएण तेत्तियं दव्वं ।

को धारणीओ धणियस्य दितओ दुक्खिओ होज्ज ।। १४२० भ.आ. ।।

पूर्व जन्म में मैंने जिसका अपराध किया था उसके द्वारा इस जन्म में उस अपराध से उपार्जित पाप कर्म की उदीरणा किये जाने पर उसको भोगते हुए मुझे दुःख कैसा ? साहूकार से पहले कर्ज लेकर जिस धन को मैंने स्वयं भोगा है उतना ही धन उस ऋण का अवधिकाल आने पर देते हुए कौन कर्जदार दुःखी होता है ? अर्थात् कोई नहीं। मुनिजन अपने ज्ञान से कषाय को क्षीण कर देते हैं। सदैव समता रस में डूबे रहते हैं। क्योंकि एक क्षण की कषाय भी अग्नि के उस कण के समान है जो कपास के ढेर को जला देता है, थोड़ी सी भी कषाय आत्मा को विशुद्धि व ऊँचाईयों से गिरा देती है अतः

वे सदैव 'उत्तम-क्षमा' के चिंतन में निरत रहते हैं उनका जीवन भर के लिए उत्तम क्षमा धर्म होता है।

'उत्तम-क्षमा' दुःखों को उत्पन्न करने वाली दुर्गति को नष्ट करने वाली है। क्योंकि क्षमावान दुर्गति को नहीं जाते वे तो सद्गति को प्राप्त करते हैं, जो बैरी है, विरोधी है वे दुर्गति को जाते हैं क्षमा के बल से प्राणी मुक्ति तक को प्राप्त कर सकता है तथा ज्ञानी जन क्षमा धारण कर अपनी आत्मा का कल्याण कर लेते हैं। रङ्घुई कवि आगे कहते हैं -

उत्तम खम गुण गण सहयारी, उत्तम खम मुणिविद पियारी।

उत्तम खम दुहयण चिंतामणि, उत्तम खम संपज्जइ थिर मणि ॥४॥

गुणों के समूह का सहचारी अर्थात् गुण समूह के साथ रहने वाली उत्तम क्षमा है। उत्तम क्षमा मुनिवृन्द-मुनियों में श्रेष्ठ गणधर पू. आचार्य परमेश्ठी को प्रिय होती है। यह ज्ञानी जनों के लिए चिंतामणी रत्न के समान है। चिंतामणी रत्न चिंतित पदार्थ को प्रदान करता है। चिंतामणी रत्न पौद्गलिक है परंतु उत्तम-क्षमा चैतन्य का धर्म है। बाहर के रत्न तो क्षणिक है, अस्थिर है, प्राप्त होकर छूट भी जाते हैं। परंतु 'उत्तम-क्षमा' आत्मा का शाश्वत धर्म है जो कभी छूटता नहीं है, चिंतामणी रत्न इच्छा करने पर, मांगने पर देता है परंतु उत्तम-क्षमा ऐसा चिंतामणी रत्न है जो बिन मांगे ही अपूर्व सुख प्रदान करता है।

जैसे-जैसे हम क्रोध को जीतते जायेंगे वैसे-वैसे क्षमा धर्म प्रकट होता जायेगा। क्रोध को जीते बिना क्षमा नहीं होती। आत्मा को क्रोधित करने वाले वचनों में जिसकी सहनशीलता आ जाए ऐसा व्यक्ति क्षमा धर्म को धारण कर सकता है। जब सहिष्णुता, क्षमा जीवन में आ जाती है तो सारी सृष्टि क्षमावान के प्रति झुक जाती है।

स्वामी विवेकानंद जी के विषय में कहा जाता है कि वे बड़े ही सहिष्णु थे उनके रहन-सहन में बहुत सादगी थी। उनकी सादी वेश-भूषा से किसी को पता ही नहीं लग सकता था कि ये विद्वान हैं। एक बार वे किसी यात्रा पर जा रहे थे, जिस रेल के डिब्बे में वे बैठे थे, उसी में दो अंग्रेज भी थे। वे अंग्रेज साधु संतों से बड़ी घृणा करते थे। इसी कारण वे रास्ते भर साधुओं की निंदा करते रहे। उन्होंने सोचा - यहाँ के साधु लोग पढ़े-लिखे नहीं होते हैं, वे अपनी भाषा को नहीं समझते हैं। अतः वे साधुओं के प्रति कुत्सित शब्दों का प्रयोग करते रहे। बुराई करते-करते गला सूख गया। उन्होंने सोचा अगले स्टेशन के आते ही सबसे पहले पानी पियेंगे। स्वामी जी उन दोनों की बातें चुपचाप सुन रहे थे।

स्टेशन आया। गाड़ी रुकी। स्वामी जी दरवाजे पर खड़े हुए। पानी पिलाने वाले व्यक्ति को पुकारा। जब वह निकट पहुँचा तो उन्होंने अंग्रेजों की ओर संकेत करते हुए कहा, 'इन्हें प्यास लग रही है, पानी पिलाओं।'

"Give him a jug of water because they are very thirsty".

अंग्रेजों ने जब ऐसा सद्व्यवहार देखा तो लज्जा से उनके सिर झुक गये। मन में सोचा, यह व्यक्ति कौन है ? इसके दिल में तो बड़ी सहृदयता है, और यह तो अंग्रेजी भी जानता है। अपनी सब बातों को यह समझ रहा था ऐसा प्रतीत होता है। कुछ ही समय पश्चात् जब उन्हें पता चला कि ये तो स्वामी विवेकानंद जी हैं। तब वे बहुत शर्मिन्दित हुए, चरणों में पड़ क्षमा याचना करने लगे। वे बोले धन्य है स्वामी जी आपकी क्षमाशीलता को आप बहुत ही उदार व सहनशील हैं।

हमने इतनी गालियाँ दी, अपशब्द कहे फिर भी आप नाराज नहीं हुए प्रत्युत हमारे लिए पानी की व्यवस्था की। ऐसे महापुरुष ही विश्व कल्याण कर सकते हैं। दोनों ही व्यक्ति अपनी गलती पर पछताए।

गालियाँ व अप्रिय वचन सुनकर भी जो गुस्सा नहीं करता है, वही मानव विश्व का ताज बन सकता है। गालियों को समभाव से सहन करने वालों के सामने दुश्मन भी मित्र बन जाते हैं। कहा भी है -

सुन करके अप्रिय वचन, रखता जो समभाव।

जग में उसका अन्य पर, पड़ता अमित प्रभाव।।

दूसरों के दोषों को किसी से नहीं कहना यह भी उत्तम क्षमा है। हम दूसरों के दोषों को उखाड़ कर खुश होते हैं। कुछ लोग कैची बनकर खुशी मनाते हैं तो कुछ लोग सुई बनकर प्रमुदित होते हैं। किसी के दोषों को दूसरों से कहना सबसे बड़ा अपराध है। गुरु से किसी की गलती को कहना वह चुगली नहीं अपितु स्थितिकरण का हेतु बनता है क्योंकि गुरु गरिमा, मर्यादा से समझाते हैं, हितैषी भावना रखते हैं जबकि अन्य व्यक्ति तो मात्र आपकी गलती देखकर आपका उपहास करेंगे, आपको गिराने का प्रयत्न करेंगे अतः गुरु के अतिरिक्त अन्य किसी के सामने दोष प्रकट करोगे तो वह चुगली कहलायेगी। यदि आप किसी के दोष कहेंगे तो वह भी तैयार बैठा है आपके दोषों का बखान करने के लिए। अतः सदैव ध्यान रखो -

“दोष वादे च मौनम्” को सदा मन में रखो। दुःश्रुति सुनने का अवसर आये तो कान बंद करो। दुर्जन दुःश्रुति में आनंद मनाते हैं जबकि सज्जन सदैव दूर रहते हैं।
आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

पू. आचार्य महाराज कहते हैं जहाँ क्षमा भाव पैदा होता है वहाँ परनिंदा का भाव भी नहीं रहता अपितु सहिष्णुता उत्पन्न होती है। रङ्घुई कवि आगे कह रहे हैं -

**उत्तम खम महणिज्ज सयलजणि, उत्तम खम मिच्छत्त तमो मणि ।
जहि असमत्थहं दोसु खमिज्जइ, जहि असमत्थहं णउ रुसिज्जइ ॥ ५ ॥
जहि आकोसण वयण सहिज्जइ, जहि पर दोसु ण जणि भासिज्जइ ।
जहि च्चेयण गुण चित्त धरिज्जइ, तहि उत्तम खम जिणं कहिज्जइ ॥ ६ ॥**

उत्तम क्षमा सब प्राणियों के द्वारा पूज्य है। और उत्तम क्षमा मिथ्यात्वरूपी तम को दूर करने के लिए मणि के समान है जहाँ असमर्थ पुरुषों के दोष क्षमा किये जाते हैं, जहाँ असमर्थ व्यक्तियों पर रोष नहीं किया जाता, जहाँ कठोर वचन सहन किये जाते हैं, जहाँ दूसरों के दोष नहीं कहे जाते हैं और जहाँ चेतन के गुण चित्त में धारण किये जाते हैं, वहाँ उत्तम क्षमा होती है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

**इय उत्तम खम जुय णर सुर खगणुय केवलणाणु लहेवि थिरु ।
हुय सिद्ध णिरंजणु भव दुह भंजणु अगणिय रिसि पुंगव जि चिरु ॥**

इस प्रकार उत्तम क्षमा से युक्त (प्राणी) मनुष्य, देव और विद्याधरों से वंदित तथा भवदुःख का नाश करने वाले केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं तथा कर्मकलंक को नष्ट कर सिद्ध हो जाते हैं।

पू. आचार्य श्री सकलकीर्ति महाराज कहते हैं।

**क्रोध शत्रुरतिदुःखदो नृणां धर्मरत्नहरणे च तस्करः ।
श्वभ्रमूलगृह प्रापणपान्थो घातनीय इह शांति कृपाणैः ॥ ९८ ॥**

मनुष्यों को क्रोध रूपी शत्रु अति दुःख देने वाला है अनेक भवों तक रूलाने वाला है। धर्म रूपी रत्न को हरण करने वाला है जिसके प्रगट होने पर धर्म रूपी रत्न नष्ट हो जाते हैं अर्थात् धर्म रूपी रत्न को चुराने वाला, नरक रूपी गृह को प्राप्त कराने के लिए पथिक के समान जो सहायक है। ऐसे क्रोध को तुम निश्चय से क्षमा रूपी तलवार से वश में करो। क्योंकि “क्षमया किं न जायते” क्षमा से क्या नहीं हो सकता अर्थात् सब कुछ हो सकता है। क्षमा एक ऐसा शस्त्र है जिससे बड़े-बड़े योद्धा भी परास्त हो जाते हैं। इसलिए हे भव्य! क्षमा रूप रत्न को तुम ग्रहण करो तथा उसका अवलम्बन लो। तथा आत्म कल्याण के पथ को प्रशस्त करो।

“भगवान महावीर स्वामी की जय”

“उत्तम मार्दव विनय प्रकाशे”

कुल रुवजादि बुद्धिसु तव सुद सीलेषु गारवं किञ्चि ।

जो ण वि कुब्बदि समणो मद्दव धम्मं हवे तस्स ॥ वा. अणु.७२ ॥

जो श्रमण (मनुष्य) कुल, रूप, जाति, बुद्धि, सुतप, शास्त्र और शीलादि के विषय में थोड़ा भी घमण्ड नहीं करता है उसके मार्दव धर्म होता है ।

अभावो योऽभिमानस्य परेः परिभवे कृते ।

जात्यादीनामना वेशान्मदानां मार्दवं हितत् ॥ त. सा. ॥

दूसरों के द्वारा अनादर किये जाने पर भी जाति आदि मदों का आवेश न होने से जो अभिमान का अभाव है वह मार्दव धर्म है ।

भद्रं मार्दव वज्राय येन निर्लन पक्षतिः ।

पुनः करोति मानादि नोत्थानाय मनोरथम् ॥ अन. धर्मा. ॥

उस मार्दव रूपी व्रज का कल्याण हो जिसके द्वारा शक्ति विशेष के मूल से छिन्न हो जाने के कारण मान रूपी पर्वत पुनः उठने का मनोरथ नहीं करता ।

मार्दव धर्मः- महिमा मार्दवोपेतं गुरवोऽनुगृह्णन्ति, साधवोऽपि साधुमामन्यन्ते ।

ततश्च सम्यग्ज्ञानादीनां पात्री भवति/ततः स्वर्गापवर्ग

फलावाप्तिः । मलिने मनसि व्रतशीलानि नावतिष्ठन्ते ।

साधवश्चैनं परित्यजन्ति । तन्मूला सर्वा विपदः । राज. वार्ति.

९/६/२७/५९९/१२

मार्दव गुण युक्त व्यक्तियों पर गुरुओं का अनुग्रह होता है । साधु जन भी उसे साधु मानते हैं । गुरु के अनुग्रह से सम्यग्ज्ञानादि की प्राप्ति होती है । और उससे स्वर्गादि सुख मिलते हैं । मलिन मन में व्रतशीलादि नहीं ठहरते हैं साधुजन उसे छोड़ देते हैं तात्पर्य अहंकार समस्त विपदाओं की जड़ है ।

महात्म्य -

विणयं पंचपयारं पालहि मण वयण काय जोएण ।

अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं ण पावन्ति ॥ भा.पा.१०२

हे मुने! पाँच प्रकार की विनय को मन-वचन-काय तीनों योगों से पाल क्यों कि विनय रहित मनुष्य सुविहित मुक्ति को प्राप्त नहीं करते हैं

उत्तम गाण-पहाणो उत्तम तवयरण करण सीलो वि ।

अप्पाणं जो हीलदि मद्दव-रयणं भवे तस्स ॥ का.अ.३९५

उत्कृष्ट ज्ञानी और उत्कृष्ट तपस्वी होते हुए भी जो मद नहीं करता वह मार्दव रूपी रत्न का धारी है।

मान के भेद:- सेलट्टिकट्टवेत्ते णियभेएण णुहरंतओ माणो । जी. का.

पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान, बेंत के समान ४ प्रकार के मान के भेद कहे गये हैं।

मान दावाग्नि दग्धेषु मदोषरकषायिषु ।

नृद्वयेषु परोहन्ति न सच्छायोचिताङ्कुराः ॥ स.श्लो.श.

मान रूपी दावानल से जले एवं मदरूपी ऊषर क्षार मिट्टी से युक्त मनुष्य रूपी वृक्षों में समीचीन छाया के योग्य अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं।

वीणेव श्रोत हीनस्य लोलाक्षीव विचक्षणः ।

व्यसो कुसुम मालेव विद्या स्तब्दस्य निष्फलाः ॥ स.श्लो.स.

जिस प्रकार बधिर मनुष्य के सामने वीणा, अंध मनुष्य के सामने चपल लोचना स्त्री और मृत मनुष्य के ऊपर डाली गई माला व्यर्थ है उसी प्रकार अभिमानी मनुष्य की विद्या व्यर्थ है।

मान के दोष -

कुलरुवाणा बलसुदलाभस्सरयत्थमदितवादीहिं ।

अप्पाण मुण्णमंतो नीचागोदं कुणदि कम्मं ॥ भ.आ. १३६९

कुल, रूप, आज्ञा, बल, श्रुत, लाभ, ऐश्वर्य, तप तथा अन्य बातों में अपने को बड़ा मानने वाला, उनका अहंकार करने वाला नीचगोत्र नामक कर्म का बन्ध करता है।

मार्दव से लाभ -

सयणस्स जणस्स पिओ णरो अमाणी सदा हवदि लोए ।

(गाणं जसं च अत्थं लभदि सकज्जं च सोहदि । भ.आ. १३७३)

मान रहित व्यक्ति जगत् में स्वजन और परजन सदा सबका प्रिय होता है वह ज्ञान, यश और धन प्राप्त करता है तथा अन्य भी अपने कार्य को सिद्ध करता है।

स्वसंधे मान्यतां पूजां ख्यातिं च स्तवनादिकान् ।

तपो रत्नत्रयं शुद्धं, लभन्ते विनयांकिताः ॥ मू.प्र. १९६३

विनय धारण करने वाले मुनियों को अपने संघ में भी मान व आदर सत्कार मिलता है, बड़प्पन मिलता है, कीर्ति मिलती है, सब लोक उनकी स्तुति करते हैं तथा विनय से मुनियों को शुद्ध तपश्चरण और शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

हे भव्य ! जो पाप रूपी वृक्ष सींचने के लिए जल है, कर्म रूपी खेत का बीज है, कुत्सित मद को करने वाला है, सार रहित है, धर्म रूपी लता को काटने के लिए कुठार है, दुर्गति की प्राप्ति का कारण है, ऐसे मान रूपी शत्रु को तुम नष्ट करो तथा अत्यंत सार पूर्ण मार्दव धर्म की आराधना करो।

‘क्षमा धर्म’ को धारण करते हुए आज हमें आगे बढ़ना है मृदुता की ओर, जहाँ मृदुता होती है वहाँ ‘मार्दव धर्म’ उद्भूत होता है। कहा भी है “मृदोर्भावः मार्दवः।” अन्य शास्त्रों में भी मार्दव धर्म का स्वरूप बताया गया है - वृहद् द्रव्य संग्रह में कहा है -

जात्यादि मदावेशादभिमानाभावो मार्दवः ।

उत्तम जाति आदि के आवेग से अभिमान का न होना मार्दव है।

सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम में कहा है -

नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ मार्दव लक्षणम् । मृदुभावः

मृदु च मार्दवं, मद निग्रहोमान विधत श्रेत्यर्थः ।

बड़ो का विनय करना, उनके समक्ष नम्रता धारण करना और उददण्डता रहित प्रवृत्ति करना मार्दव धर्म का लक्षण है। मृदुभाव (कोमलता) अथवा मृदुकर्म (नम्र-व्यवहार) को मार्दव कहते हैं मद का निग्रह (मान कषाय का नाश) उसे मार्दव धर्म कहते हैं।

कवि रङ्घुई मार्दव धर्म के विषय में कहते हैं -

त्यक्त मानं सुखागारं मार्दवं कृपयान्वितम् ।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

मान को छोड़कर/त्यागकर जो सुख का आगर/आलय है और कृपा से युक्त है ऐसे उस उत्तम मार्दव धर्म की प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक उसकी पूजा करता हूँ।

धर्म बुद्धि को धारण करने वाले भव्यों को नित प्रति अन्य जीवों पर मृदुता रखनी चाहिए, कोमल, नम्र, सरल भाव रखना चाहिए। क्योंकि कठोरता से व्यक्ति

वजनदार हो जाता है। जिसका मन, वचन, काय कठोर होता है वह किसी को झुका नहीं सकता क्योंकि स्वयं कठोर है, स्वयं झुको तभी दूसरों को झुका सकते हो, जो स्वयं झुकता है वही दूसरों को झुका सकता है। कहा भी है -

**लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।
चींटी ले शक्कर चली, हाथी के सिर धूर।।**

जो व्यक्ति लघुता का व्यवहार करता है, वह एक दिन प्रभु बन जाता है। और जो अपने को बड़ा कहता है वह कभी भी बड़ा नहीं होता और जो सदैव अपने को छोटा कहता है वह छोटा नहीं होता। लघु व्यक्ति के चरणों में दुनिया आ जाती है और वह लघुता उसे एक दिन परमात्म पद को प्रदान करा देती है। अतः काठिन्यता को त्याग कर प्राणी मात्र के प्रति मृदुता रखना चाहिए। अपने को चार अक्षरों का ज्ञान हो जाता है तो सारी दुनियाँ को तुच्छ समझने लगते हैं। जिस ऊँचाई की बात आप कर रहे हो वहाँ तुम पहुँच सकते हो पर तुम्हारे साथ कोई नहीं जा सकेगा।

आप M.A. के छात्र हो सकते हैं पर सभी नहीं, यदि आपके समक्ष Primary के छात्र हैं तो आपको उनसे उसी Standard की बात करनी चाहिए, यदि ऊँचे level की बात करेंगे तो वह उठ कर चला जायेगा। यदि मृदुता आपके अंदर है तो सारी दुनियाँ झुक जायेगी।

मार्दव भाव, नम्रता, सरलता, विनयाचार का भाव संसार का मर्दन कर देते हैं, जो सम्यक् प्रकार से नम्रता को धारण कर लेता है। वह संसार को नष्ट कर देता है। अहंकार से संसार की वृद्धि होती है। अतः मार्दव धर्म अपनाये। रङ्गधुई कवि भी अपनी जयमाला में आगे कह रहे हैं।

**मद्दद भव मद्दणु, माण णिकंदणु, दय धम्महु मूल जि विमलु।
सब्बहं हिययारउ गुण गण सारउ, तिसहु वउ संजम सहलु।।२।।
मद्दद माण कसाय विहंणु, मद्दद पंचिंदिय मण दंडणु।
मद्दद धम्मे करुणा वल्ली, पसरइ चित्त महीहि णवल्ली।।३।।**

मार्दव धर्म संसार का नाश करने वाला है, मान का मर्दन करने वाला है, दया धर्म का मूल है, निर्मल है, सबका हित-कारक है और गुणों में श्रेष्ठ है। व्रत और संयम उसी से सफल होते हैं। “मार्दव धर्म” मान कषाय का नाश करता है तथा पाँचों इंद्रियों और मन का निग्रह करता है। मार्दव धर्म करुणारूपी नूतन लता है, जो चित्तरूपी पृथ्वी पर फैलती है।

परंतु आज का सारा संसार अभिमान में जी रहा है। पू. आचार्य नेमीचंद्र महाराज (सिद्धान्त चक्रवर्ती) कह रहे हैं कि मनुष्य गति में सबसे अधिक मान होता है। छोटे से बच्चे को भी चार अक्षर का ज्ञान हो जाता है तो वह भी अहंकार से बात करता है, मैंने बहुत सारे नंबर प्राप्त किये हैं। मान की भूमिका में व्यक्ति दूसरों को हीन दृष्टि से देखता है, अभिमानी व्यक्ति वृद्धि, विकास भी करता है तो मान के पोषण के लिए करता है। व्यक्ति मकान बनाता है तो भी यह दिखाने के लिए, मैंने इतना ऊँचा मकान बनाया। धनवान, धन का मान करता है, रूपवान, रूप का मान करता है। अभिमानी स्वयं को सब कुछ मानता है, दूसरे का अनादर कर प्रसन्न होता है।

परंतु बंधुओं! अभिमान एक कषाय है जिस बात से आज तुम इठला रहे हो उसके कारण तुम्हें रोना पड़ेगा। रावण पहले इठला रहा था लेकिन जब लंका जली तब रोता है। रानी लक्ष्मीवती ने अभिमान में आकर मुनि का अपमान किया फलतः उसे कुष्ठ हो गया। व्यक्ति दूसरे का तिरस्कार करके पाप को बाँधता है। और जब वह पाप कर्म उदय में आता है तो रोता है। अतः मान का भंजन करना चाहिए। जिन्हें धन धान्यादि वस्तुओं का अभिमान होता है उन्हें समझाते हुए पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज अपनी सुभाषित रत्नावली में कहते हैं -

अहंकारं त्यजेद् धीमान् धनधान्यादि वस्तुषु।

यतो न शाश्वतं किञ्चिद् दुष्ट राजाग्नितस्करात्॥१००॥

जिस धन-धान्यादि वस्तुओं का हम अहंकार करते हैं कि मेरे पास इतना धन है, मकान है, जमीन जायदाद आदि है। उस धन को दुष्ट राजा, चोरादि छीन लेते हैं तथा वह अग्नि में जलकर भस्मीभूत हो जाता है। कुछ भी तो शाश्वत नहीं रहता ऐसे धन धान्यादि का क्या अभिमान करना? क्योंकि सब कुछ तो कर्मोदय के वशीभूत है। यदि पुण्य कर्म है तो पास रहता है अन्यथा पास होने पर भी छोड़कर चला जाता है। ऐसे नाशवान धन धान्यादि का अहंकार छोड़कर शाश्वत पद की प्राप्ति के लिए चेष्टा करनी चाहिए।

जो व्यक्ति महादुःखदायी मान कषाय का आश्रय लेता है वह नीच गोत्र को प्राप्त करता है। पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं -

यो मदान्धो जानाति हिताहित विवेचनम्।

स पूज्येषु मदं कृत्वा श्वान गर्दभाम्भवेत्॥१०१॥

जो मदान्ध मनुष्य हित किसमें है और अहित किसमें है इस प्रकार का विवेक

नहीं रखता तथा पूज्य पुरुषों के प्रति अहंकार करता है अर्थात् अहंकार के कारण वंदनीय पुरुषों की जो वंदना, भक्ति आदि नहीं करता। मात्र मान से चकचूर रहता है वह मनुष्य मर करके कुत्ता तथा गधा की योनि में उत्पन्न होता है। कहा भी है -

“मान महाविष रूप करहि नीच गति जगत में”

मान हलाहल विष के समान है, जो प्राणियों को नीच गति में ले जाता है। इसीलिए विवेकियों को मान का त्याग कर पूज्य पुरुषों के प्रति आदर करना चाहिए। क्योंकि विनयमान पुरुष ही सुख शांति का अनुभव कर सकता है। जैसा कि भगवती आराधना में भी कहा गया है कि “जो उत्तम कुल आदि को प्राप्त करके दूसरों को अपने से विशिष्ट मानता है, किसी की अवज्ञा नहीं करता, अपनों से बड़ों के प्रति नम्र व्यवहार करता है, पूछने पर भी दूसरों के दोष को नहीं कहता और अपनी प्रशंसा नहीं करता वह मान रहित व्यक्ति उच्च गोत्र का बंध करता है जो कि प्राणी को इष्ट है।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं कि यह मार्दव धर्म दस धर्मों की मूल है। विनय से ही दस धर्म जीवन में आ सकते हैं मार्दव धर्म संसार के प्रत्येक प्राणी का हितकारी है, नम्रता से क्षति नहीं होती, नम्रता से कभी हानि नहीं होती।

आप जितना झुकेंगे उतना ही उठेंगे, किसी व्यक्ति की धारणा ऐसी होती है जो ज्यादा झुकता है उसे और दबाया जाता है परंतु ऐसी बात नहीं है कोई आपको कितना ही दबाए परंतु आपकी समता को देखकर ५० लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। ज्ञानी सदैव समता रखता है जबकि अज्ञानी बात-बात में उफना जाता है। नम्रता शील की बात को सभी स्वीकार कर लेते हैं, वह प्राणी मात्र का हित कर देता है, नम्र के पास सभी आते हैं, अभिमानी के पास कोई नहीं जाता।

समस्त व्रतों में संयम, व्रत, तप आदि को नम्रता सफल कर देती है। अभिमानी व्यक्ति सब कुछ दाव पर लगा देता है, नम्रता से व्रत, नियम, संयम का श्रृंगार होता है, तप की सफलता मार्दव धर्म में है। कविवर रङ्घुई उसी मार्दव धर्म की महिमा गा रहे हैं वे कहते हैं

मद्दउ जिणवर भक्ति पयासइ, मद्दउ कुमइ पसरु णिण्णा सई।

मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ, मद्दवेण मणवइरु उहट्टइ ॥४॥

मार्दव धर्म जिनेन्द्र देव की भक्ति प्रकट करता है, मार्दव धर्म कुबुद्धि का प्रसार रोकता है, मार्दव धर्म से विनय प्रकाश में आती है और मार्दव धर्म से मनुष्य का बैर दूर हो जाता है।

मद्दवेण परिणाम विसुद्धी, मद्दवेण विहु लोयहं सिद्धी ।

मद्दवेण दो विहु तउ सोहइ, मद्दवेण णरु तिजगु विमोहइ ॥५॥

मार्दव धर्म से परिणामों में विशुद्धि आती है, मार्दव धर्म से उभयलोक की सिद्धि होती है, मार्दव धर्म से दोनों प्रकार का तप सुशोभित होता है और मार्दव धर्म से मनुष्य तीनों लोकों के प्राणियों को मोहित कर लेता है ।

मद्दउ जिण सासण जाणिज्जइ, अप्पा पर सरुव भाविज्जइ ।

मद्दउ दोस असेस णिवारइ, मद्दउ जन्म उअहि उत्तारइ ॥६॥

मार्दव धर्म से जैन शासन का ज्ञान तथा अपने और पर के स्वरूप का प्रतिभास होता है । मार्दव धर्म सभी दोषों का निवारण करता है तथा संसार समुद्र से पार करा देता है ।

समद्दंसण अंगु मद्दउ परिणामु जि मुणहु ।

इय परियाणि विचित्त मद्दउ धम्म अमल थुणहु ॥७॥

मार्दव परिणाम सम्यग्दर्शन का अंग है, ऐसा जानकर अद्भुत और निर्मल मार्दव धर्म की स्तुति करो ।

मार्दवता, मृदुता में सुख है, अभिमान में दुःख ।

मृदुता में सम्मान है, अभिमान में अपमान ।

मृदुता में उन्नति है, अभिमान में अवनति ।

मृदुता में प्रेम है, अभिमान में घृणा ।

मृदुता से सब अपने, अभिमान में सब पराये ।

मृदुता में प्राप्ति, अभिमान में अप्राप्ति ।

अभिमानी जब एकांत में बैठता है तो दुःखी होता है, पश्चाताप करता है क्योंकि सबसे बड़ा कष्टदायक अभिमान है क्रोध क्षणभर का होता है अभिमान अधिक समय तक टिकता है । एक व्यक्ति सभा में बैठता है यदि जगह न हो तो व्यक्ति पीछे बैठता है और अवसर की तलाश में रहता है कि कैसे आगे बढ़ जाऊँ । जब आगे स्थान मिल जाता है तो स्टेज और स्टेज से कुर्सी पर बैठता है । यह लंबी श्रृंखला अभिमान की है उसका सारा जीवन ही अभिमान में खो जाता है । आज व्यक्ति अपने दुःख से उतना दुःखी नहीं है अपितु दूसरे के सुख से दुःखी है । कि दूसरा आखिर इतना सम्मान क्यों पा रहा है ?

जब रेस (Race) होती है । तो एक दौड़ने वाला बालक जब दूसरे बालक से पीछे रह जाता है तो उसे गिराने का प्रयत्न करता है, वह यह भी नहीं सोच पाता कि वह दूसरे को

दुःखी करके स्वयं सुखी होना चाहता है नम्र स्वभावी के ऊपर कूड़ा-कचरा फेकेंगे, तो वह यही सोचेगा कि मुझे स्नान करने का अवसर मिल गया।

एक संत थे वे जाप, पूजा-पाठ के निमित्त मंदिर जाते थे वे जिस रास्ते से होकर जाते थे उस रास्ते में एक सेटानी जी का ७ मंजिला मकान था। सेटानी रूपवान व धनवान थी इस बात का उसे बहुत अभिमान था। जब उसने संत को अपने घर के नीचे से निकलता देखा तो सोचने लगी मैं इतनी रूपवती इतनी धनाढ्य फिर भी ये संत मेरे घर नहीं आते, उसका अभिमान ७वें आसमान चढ़ा और क्रोध में शब्द बोलती हुई संत के ऊपर कचरा फेकती है, क्षमा स्वभावी संत ने कचरा झड़ाया और आगे बढ़ गये। यह देख उसे और गुस्सा आया और उसने दूसरे दिन पुनः कचरा डाला। संत ने फिर भी झड़ा दिया। तीसरे दिन डाला तो भी झड़ा दिया। अब की बार सेटानी ने सोचा कुछ और उपाय निकालना चाहिए जिससे ये संत भड़के। अब की बार उसने राख से भरा कनस्टर उठाया और जैसे ही संत निकले उनके ऊपर उड़ेल दिया और जोर-जोर से हंसने लगी — देखो-देखो कैसे दिख रहे हैं बाबा की तरह। इधर संत महाराज ने क्रोध नहीं किया अपितु हाथ जोड़ सिर ऊपर कर बोले हे भगवन्! आप कितने दयालु हैं कि आपने राख ही मेरे ऊपर डाली है आपने बड़ी कृपा की अंगारे तो नहीं बरसाये। यदि अंगारे डालते तो मेरा क्या होता। जैसे ही महिला ने ये शब्द सुने वह पानी-पानी हो गई, तुरंत अपनी ७ मंजिला बिल्डिंग से नीचे उतरी और संत से क्षमा याचना करने लगी — हे संत! धन्य है आप, मैंने आपको इतना कष्ट दिया फिर भी आप मुस्कुरा रहे हैं कृपया मेरी धृष्टता को क्षमा कीजिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि अभिमानी से भी अभीमानी व्यक्ति को लघुता से/ नम्रता से झुकाया जा सकता है उग्रता से नहीं। अभिमान हमारी हानि करता है अतः नम्रता/मृदुता को जीवन में अपनाना चाहिए। पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज यहाँ मृदुता की महिमा व अभिमान से हानि बताते हुए कह रहे हैं।

दुरिततरुसुनीरं कर्मक्षेत्रस्य बीजं, कुमदकरमसारं धर्मवल्लीकुठारम्।

कुगति गमनहेतुं मान शत्रु जहि त्वं, सकलमपि सुसारं मार्दवं भो भजस्व।।१०३।।

पाप की वृद्धि करने के लिए वृक्ष के समान, कर्म रूपी खेत का बीज, कुत्सित मद को उत्पन्न करने वाला, असार रूप धर्मरूपी लता को काटने के लिए कुल्हाड़ी के समान, कुगति में गमन का कारण ऐसे मान रूप शत्रु को तुम नष्ट करो। और हे आत्मन्!

सर्वगुणों में श्रेष्ठ ऐसे मार्दव धर्म का सेवन करो। क्योंकि मान रहित पुरुष के ही वचन में सत्यता, बुद्धि में आगम, हृदय में दया, बाहु में शूरवीरता, पराक्रम में लक्ष्मी, प्रार्थी जनों के समूह को परिपूर्ण दान तथा मुक्ति मार्ग में गमन ये सब गुण होते हैं। जैसे कोमल बेंत को मोड़ा जा सकता है। लेकिन जो मान के शिखर पर सीधा वृक्ष, तूफान आदि के आ जाने पर गिर जाता है। संपूर्ण नाश को प्राप्त हो जाता है लेकिन मुड़ नहीं सकता। उसी प्रकार मान रूपी शिखर पर चढ़ा प्राणी नाश को प्राप्त हो जाता है। इसलिए हे भव्यों! आप मान रहित आचरण करो। मृदुता से आत्मा को श्रृंगारित करो। मृदुता ही जीवन का सार है, पर वह मृदुता जीवन में कैसे आये ? तो मान को जीतने का उपाय बताते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज कह रहे हैं -

को इत्थ मज्झ माणो बहुसो णीचत्तणं पि पत्तस्स ।

उच्चत्ते यह अणिच्चे उवट्ठिदे चावि णीचत्ते ॥ भ.आ.१४२२ ॥

ज्ञान, कुल, रूप, तप, धन, प्रभुत्व आदि में, मैं ऊँचाँ भी होऊँ, तो उसका गर्व कैसा, क्यों मैं अनेक बार इनमें नीचा भी हो चुका हूँ। उच्चता और नीचता ये दोनों अनित्य है।

अधिगेषु बहुसु संतेसु ममादो एत्थ को महं माणो ।

को बिम्भओ वि बहुसो पत्ते पुव्वम्मि उच्चत्ते ॥ भ.आ.१४२३ ॥

इस लोक में बहुत से मनुष्य मुझसे भी ज्ञानादिक में अधिक हैं इनका मुझे अभिमान कैसा ? तथा पूर्व जन्मों में, मैं उच्चता अनेक बार प्राप्त कर चुका हूँ तब इनके प्राप्त होने पर आश्चर्य कैसा ? एक दार्शनिक ने अपने विचारों में मार्दव/मृदुता के बारे में कहा है -

"Politeness is very big virtue which get us happiness & fulfill our life with happiness & peace. Politeness is like a diamond. If we wear diamond ring or neckles or braslet or any jewellery than we look beautiful & every person impress us like that if we have a diamond of politeness than our soul look very beautiful & every person like us"

अर्थात् "नम्रता एक बहुत बड़ा गुण है जो खुशियाँ प्रदान करता है जीवन को शांति और आनंद से भर देता है। नम्रता 'हीरा' की तरह है। अर्थात् जब हम हीरे के आभूषण जैसे -हीरे की अंगूठी, हार, चूड़ी आदि पहनते हैं तो सब हमारी ओर आकर्षित होते हैं। उसी प्रकार जब हम नम्रता रूपी हीरे के आभूषण पहनते हैं अर्थात् जब हमारा जीवन नम्रता/मृदुता से भर जाता है तब हमारी आत्मा श्रृंगारित हो जाती है हमारी आत्मा अत्यंत

सुंदर, पावन हो जाती है और हर व्यक्ति हमें चाहने लगता है। नम्र व्यक्ति सबका प्रिय बन जाता है।“

योगीजन/संत जन संसार में रहते हैं फिर भी अलिप्त रहते हैं। वे संसार की बातों से प्रभावित नहीं होते।

एक बार एक बच्चा रोता हुआ गुरु के पास पहुँचा और बोला - गुरु जी, इसने मुझे (किसी अन्य बच्चे ने) गाली दी। गुरु जी बोले -

अच्छा, इसने तुम्हें गाली दी।

शिष्य - 'हाँ गुरु जी'

गुरु जी - तो बताओ वह तुमने कहाँ रखी जेब में या घर में

शिष्य - बच्चा सकपकाया और बोला - वह तो मेरे पास नहीं है

गुरु जी - माना कि उसने गाली दी, पर आपने ली क्यों ?

लेने वाला देने वाले से अधिक अपराधी होता है गुरु जी ने समझाया - गाली व्यक्ति तब देता है जब लेने वाला लेने लगता है। यदि आप लेना बंद कर दोगे तो कब तक देगा। अंत में पराजित होकर वापस चला जायेगा। ज्ञानी के चिंतन में देना ही होता है, लेना नहीं। वे पवित्र वस्तुएँ प्रदान करते हैं, वे गाली का दान नहीं करते। गाली का दान करने वाला अच्छा नहीं है। शास्त्रों की बातें, आत्मा का कल्याण करने वाली बातें लेने योग्य वस्तु को ही लीजिए, जो वस्तु ग्रहण करने योग्य नहीं है, उसे ग्रहण नहीं करता। यदि तुम गाली को ग्रहण ही नहीं करते तो परेशान नहीं होते। हमारा मन, दिल, दिमाग व्यर्थ नहीं है कि जमाने भर का कूड़ा-कचरा भर कर रखे। हमें तो अपने दिमाग को देव-शास्त्र-गुरु की अमृतमयी वाणी से भरना है।

'मार्दव भाव' - मान का मर्दन/विखंडन करने वाला होता है अभिमानी गाली देने पर कष्ट का अनुभव करता है और ज्ञानी उससे प्रभावित नहीं होता। कुत्ते का भौंकना, कुत्ते को प्रभावित कर सकता है हाथी को नहीं। महापुरुष हाथी की तरह होते हैं वे छोटी-मोटी बातों पर ध्यान नहीं देते। वे अनादर या तिरस्कार से प्रभावित नहीं होते।

पंचेंद्रिय विजय व मन का नियंत्रण करना ये सब बातें मार्दव/मृदुता के होने पर ही सार्थक हो सकती है। 'मार्दव धर्म' करुणा की बेल है। बेल किसी न किसी के सहारे

ऊपर उठती है उसी प्रकार मार्दव स्तम्भ को पाकर धर्म रूपी बेल ऊपर-ऊपर उठती जाती है। मग्न के अंदर करुणा होती है अभिमानी का हृदय पत्थर का होता है वह करुणा का प्रदर्शन तो कर सकता है परंतु वास्तविक करुणा उसके पास नहीं होती। यदि जीवन में करुणा रूपी वल्ली को उत्पन्न करना है तो मार्दव को अपनाओ।

जो व्यक्ति दूसरों के दुःख, कष्ट, वेदना व उसके तिरस्कार से उत्पन्न दुःख को समझ लेता है। तब वह स्वयं किसी का तिरस्कार नहीं करता। वह यही चिंतन बनाता है यदि कोई वैसा अनादर मेरा करेगा तो क्या मैं सहन कर पाऊँगा, जबरदस्ती भले स्वीकार करना पड़े परंतु वह मन से नहीं चाहेगा। जब तुम्हारा मन कष्ट नहीं चाहता तो हे ज्ञानी! तुम दूसरे का अनादर करने की कैसे सोच रहे हो। अपनी वेदना/पीड़ा की तरह ही दूसरे की पीड़ा/वेदना को समझना चाहिए।

माता-पिता या गुरुजन भी शिष्यों या बच्चों से गलतियाँ होने पर डाँट लगाते हैं, Control करते हैं परंतु जब सामायिक में बैठते हैं, चिंतन में उतरते हैं तो स्वयं दुःखी होते हैं। परंतु यदि मैं अमुक शिष्य को Control न करूँ तो वह दुर्गति में जायेगा वे अंतरंग में मृदुता रखते हैं इसलिए वे नारियल की तरह होते हैं बाहर कठोर अंदर मुलायम। प्रायः संसार में चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं -

(१) सुपारी (२) बेर (३) नारियल (४) किशमिश

(१) सुपारी - अंदर से कठोर बाहर से कठोर। ऐसा व्यक्ति अंदर, बाहर दोनों तरफ से नहीं झुकता।

(२) बेर - बाहर से नरम व अंदर कठोर। अभिमानी व्यक्ति भले बाहर से नरम दिखे पर अंदर से कठोर होता है। वह अपने लौकिक प्रयोजनों की सिद्धि के लिए ऊपर से नम जाता है।

(३) नारियल - गुरुजन, अधिकारी वर्ग को नारियल की तरह होना चाहते हैं ऊपर से कठोर अंदर से मुलायम।

(४) किशमिश - यह उत्तम मार्ग है, शिष्य को किशमिश की तरह होना चाहिए अंदर बाहर एक अर्थात् अंदर से भी मुलायम तथा बाहर से भी मुलायम। तभी वह गुरु चरणों में रहकर निर्वाण की सिद्धि कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विनय गुण का बड़ा माहात्म्य है विनय का लक्षण बताते हुए भगवती आराधना में कहा गया है।

पूज्येष्व्वादरो विनयः। स.सि. /८/२०/४३९/७

पूज्य पुरुषों का आदर करना विनय है। अन्य शास्त्रों में भी विनय का स्वरूप बतलाया गया है।

ज्ञान दर्शन चारित्र तपसा मतीचाराः अशुभ क्रियाः।

तासामपोहनं विनयः। भ.आ. /६/३२/२३

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप के अतिचार अशुभ क्रियाएँ हैं इनका हटाना विनय तप है।

रत्नत्रय वत्सु नीचैर्वृत्तिर्विनयः। ध.१३/५,४,२६/६३/४

रत्नात्रय को धारण करने वाले पुरुषों के प्रति नम्र वृत्ति रखना विनय है।

विलयं नयति कर्ममलमिति विनयः। भ.आ. ३००/५११/२१

कर्ममल को नाश करता है इसलिये विनय है।

कषायेन्द्रिय विनयनं विनयः। चा.सा.१४७/५

कषायों और इन्द्रियों को नम्र करना विनय है।

बंधुओं! भगवान की भक्ति भी वही कर सकता है जो निरभिमानी हो। अभिमानी भगवान की भक्ति नहीं कर पाता, नम्रता तभी आ सकेगी जबकि आप प्रभु को बहुत बड़ा तथा अपने को बहुत छोटा मान ले। प्रभु को पहाड़ व स्वयं को राई मान ले, प्रभु को सिंधु व स्वयं को बिंदु मान ले। अष्टपाहुड़ ग्रंथ में पू. आचार्य श्री १०८ कुंदकुंद देव कहते हैं – किंकरानुवत आचरणः भक्ति। अर्थात् दास/सेवक बनकर ही वास्तविकता में भक्ति होती है। एक सेवक रुपया पैसा के लिए स्वामी की सेवा करता है, भक्त व्यापारी नहीं है वह तो बिना चाहत के निःस्वार्थ भावना से समर्पित होता है और जो समर्पित है वही भगवान की पूजा कर सकता है। जिनेन्द्र देव की भक्ति को प्रकाशित करने वाला मार्दव धर्म होता है। मार्दव धर्म कुमति के प्रकाशन को नष्ट कर देता है। मार्दव धर्म के द्वारा विनय का प्रवर्तन होता है। भगवती आराधना में ५ प्रकार की विनय का वर्णन करते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज कहते हैं –

विणओ पुण पंच विहो णिदिदट्ठो णाण दंसण चरित्ते।

तवविणवो च चउत्थो चरिमो उवयारिओ विणओ।।१११ भ.आ.।।

(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) तप और (५) उपचार। ये पांच प्रकार की विनय होती है। ज्ञान विनय के भेद -

ज्ञान विनय -

काले विणये उवधाणे बहुमाणे तहेव णिण्हवणे ।

वंजण अत्थ तदुभये, विणओ णाणम्मि अट्ठविहो ।।११२ भ.आ.।।

काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिन्हनव, व्यंजन शुद्धि, अर्थ शुद्धि, उभय शुद्धि, ये ज्ञान के विषय में ८ प्रकार की विनय कही हैं।

दर्शन विनय -

पूर्वोक्त उपगूहण या उपवृंहण आदि तथा भक्ति आदि गुण, शंका आदि का त्याग यह सम्यक्त्व (दर्शन) विनय है।

चारित्र विनय -

इंदिय कषाय परिधाणं पि य गुप्तीओ चेव समिदीओ ।

एसो चरित्त विणओ समासदो होइ णायव्वो ।।११४ भग.आ.

अर्थ - इन्द्रिय और कषाय रूप से आत्मा की परिणति न होना, और गुप्तियाँ और समितियाँ वह संक्षेप से चारित्र विनय है।

तप विनय -

भत्ती तपोधिगंमि य तवम्मि य अहीलणा य सेसाणं ।

एसो तवम्मि विणओ जहुत्त चारिस्स साधुस्स ।।११९ भग.आ.

अर्थ - जो तप में अधिक है उनमें और तप में भक्ति और जो अपने से तप में हीन है उनका अपरिभव यह श्रुत के अनुसार आचरण करने वाले साधु की तप विनय है।

उपचार विनय -

काइयाइय माणसिओत्ति तिविधो हु पंचमो विणओ ।

सो पुण सव्वो दुविहो पच्चक्खो चेव पारोक्खो ।।१२० भग.आ.

अर्थ - पाँचवी उपचार विनय तीन प्रकार की है कायिक, वाचनिक और मानसिक। वह तीनों प्रकार की विनय दो प्रकार की है प्रत्यक्ष विनय और प्ररोक्ष विनय।

दस धर्मों में मार्दव अर्थात् विनय धर्म कहा, १२ तपों में विनय तप, पंचाचारों में विनयाचार, सोलह कारण भावनाओं में विनय संपन्नता कही गई। सर्वत्र विनय को उच्च स्थान दिया गया है कुंदकुंद देव ने मूलाचार में कहा -विनय ही मोक्ष का द्वार है। रयणसार में कहा -विनय के बिना धर्म की उत्पत्ति नहीं हो सकती। मार्दव धर्म विनय को प्रकाशित करता है। मार्दव के द्वारा दीर्घकालीन बैर भी नष्ट हो जाता है मृदुता को धारण करने वाला ही जिन शासन का ज्ञान प्राप्त कर सकता है अभिमानी नहीं।

स्व व पर का ज्ञान मार्दव धर्म से ही हो सकता है।

मार्दव धर्म जन्म रूपी उदधि से पार कर देता है।

मार्दव धर्म निर्मल परिणामों को उत्पन्न करता है।

अपने से कोई ज्येष्ठ, पूज्यनीय है तो सदैव उनकी विनय करना चाहिए।
भगवती आराधना ग्रंथ में कहा है -

अभिमानि कभी भी सुसमाधी को प्राप्त नहीं कर सकता इसलिए कहा गया है -
(१) अपने से बड़ों के बीच में बोलना (२) बड़ों से ऊँचा आसन लगाना (३) बड़ों के सिर के ऊपर लेटना। ये सब असमाधी के कारण कहे हैं। इसलिए सदैव अपने से ज्येष्ठ के आगे झुकना चाहिए और यदि कोई हमसे छोटा है तो उसकी विनय भी करना चाहिए जैसे -उसे देखकर प्रसन्न हो जाना, अपने पास बिठा लेना, सुख-दुःख पूछ लेना, छोटों के प्रति वात्सल्य भाव रखना ही उनके प्रति विनय का प्रतीक है। इस प्रकार जो अपना जीवन नम्रता, विनय से भर लेता है वही मार्दव धर्म को सार्थक कर पाता है। यही बात पू. आचार्य शिवकोटि महाराज ने भगवती आराधना ग्रंथ में कही है तथा मानसिक, वाचनिक और कायिक विनय के विषय में कहा है -

कायिक विनय -

अम्भुट्ठाणं किदियम्मं णवसणं अंजली य मुंडाणं।

पच्चुग्गच्छाणमेत्तो पच्छिद अणुसाधणं चव॥१२१॥ भ.आ.

णीचं ठाणं चि गमणं णीचं च आसणं सयणं।

आसण दाणं उवगरणदाण मोगा सदाणं च॥१२२॥ भ.आ.

पडिरुव कायसंफासणदा पडिरुव काल किरिया य।

पेशणकरणं संथार करणमुवकरण पडिलिहणं॥१२३॥ भ.आ.

अर्थ - गुरु आदि के प्रवेश करने पर या बाहर जाने पर खड़े होना, कृतिकर्म या वंदना करना, शरीर को नम्र करना, दोनों हाथों को जोड़ना, सिर को नवाना, प्रत्युद् गमन अर्थात् गुरु के बैठने या खड़े होने पर उनके सामने जाना और जब गुरु जावे तो उनसे दूर रहते हुए अपने हाथ पैर को शान्त और शरीर को नम्र करके गमन करना और गुरु के साथ जाने पर उनके पीछे अपने शरीर प्रमाण भूमिभाग का अन्तराल देकर गमन करें। १२१॥

नीचा स्थान, नीचा गमन, नीचा आसन, नीचे सोना, आसद दान, उपकरण दान और अवकाश दान ये उपचार विनय के प्रकार है। १२२॥

गुरु आदि के शरीर के अनुकूल स्पर्शन, बालपने आदि अवस्था के अनुरूप वैय्यावृत्त करना और गुरु आदि की आज्ञा का पालन करना, तृण आदि का संथरा करना, उपकरणों की प्रतिलेखना करना। १२३।।

वाचिक विनय -

पूजावयणं हिदभासणं च मिदभाषणं च महुरं च।

सुत्ताणुवीचिवयणं. अणिट्टुरमकक्कसं वयणं।।१२५ भ.आ.

अर्थ - पूजा पूर्वक वचन, हितकारी भाषण, मित भाषण, मधुर भाषण, सूत्रानुसार वचन, अनिष्टुर और अकर्कश वचन, वचन विनय है

मानसिक विनय -

पापविसोत्तिग परिणाम वज्जणं पियहिदे य परिणामो।

गायव्वो संखेवेण एसो माणस्सिओ विणओ।।१२७ भ.आ.

अर्थ - पाप को लाने वाले परिणामों को न करना, जो गुरु को प्रिय और हितकर हो उसे में परिणाम लगाना, यह संक्षेप से मानविक विनय जानना।। विनय ही श्रेष्ठ गुण है, इसी से जीवन में उन्नति व विकास संभव है इसलिए किसी कवि ने कहा भी है -

तुम बड़ो से सदा नम्र होकर मिलो, और छोटे मिले प्यार से तुम मिलो।

मत अहंकार करना किसी बात का, तुम खिलों धूल में, फूल बनकर खिलो।।

विनयवान सदैव उन्नति पाता है इसी बात को पू. आचार्य महाराज अपने भगवती आराधना ग्रंथ में कहते हैं -

कित्ती मित्ती माणस्स भंजण गुरुजणे य बहुमाणं।

तित्थयराणं आणा, गुणाणु मोदोय विणय गुणा।। मू.चा.३८८

विनय से सर्व व्यापी प्रताप और ख्याति, रूप, कीर्ति, सभी से मित्रता, गर्व का मर्दन होता है गुरुजनों से बहुमान मिलता है तीर्थकरों की आज्ञा का पालन होता है गुणों की अनुमोदना की जाती है ये सब विनय के गुण हैं।

आप सब अपने जीवन में उत्तम मार्दव धर्म को धारण करें तथा जीवन को सफल बनाये अपनी आत्मा का कल्याण करें।

“बोलिये महावीर भगवान की जय“

“माया तज बन जाओ सरल”

पावइ दोसं मायाए महल्लं लहु सगाबराधेवि ।

सच्चाण सहस्साणि वि माया एक्का वि णासेदि ।।भ.आ.१३७८

अपने द्वारा थोड़ा सा अपराध होने पर भी मायाचारी महान् दोष का भागी बनता है। एक बार का भी मायाचार हजारों सत्यों को नष्ट कर देता है इस प्रकार महादोष का भागी होना और हजार सत्यों का विनाश ये माया के दोष हैं।

मायाए मित्तभेदे कदम्मि इधलोगिगच्छ परिहाणी ।

णासदि मायादोसा विसजुददुद्वं सामणं ।।भ.आ.१३७९

मायाचार से मित्रता नष्ट हो जाती और उससे इस लोक सम्बन्धी कार्यों का विनाश होता है। तथा मायादोष से विषमिश्रित दूध की तरह मुनि का धर्म नष्ट हो जाता है। इस प्रकार मित्रता और कार्य का नाश एवं मुनि धर्म की हानि ये माया के दोष हैं।

माया करेदि णीचागोदं इत्थी णवुंसयं तिरियं ।

मायादोसेण य भवसएसु डभिज्जदे बहुसो ।।भ.आ.१३८०

माया से नीचगोत्र नामक कर्म का बन्ध होता है जिससे दूसरे जन्म में नीच कुल में जन्म लेता है। तथा मायाचार स्त्रीवेद, नपुसंक वेद और तिर्यञ्च गति नामकर्म का बन्ध कराता है। माया से उत्पन्न हुए दोष से सैकड़ों जन्मों में बहुत बार ठगाया जाता है।

कोहो माणो लोहो य जत्थ माया वि तत्थ सण्णिहिदा ।

कोह मदलोह दोसा सव्वे मायाए ते होंति ।।भ.आ.१३८१

जहाँ मायाचार है वहाँ क्रोध, मान, लोभ भी रहते हैं। क्रोध, मान और लोभ से उत्पन्न होने वाले सब दोष मायाचारी में होते हैं।

डंभसएहि बहुगोहि सुपउत्तेहि उपडिभोगस्स ।

हत्थं ण एदि अत्थो अण्णादो सपडिभोगादो ।।भ.आ.१४२९

अच्छी तरह सैकड़ो छलकपट करने पर भी पुण्यहीन के हाथ में पुण्यशाली का धन नहीं आता।

माया तैर्यग्योनस्य - त.सू.६/१६

मायाचारी से तिर्यञ्च गति की प्राप्ति होती है।

वक्रवृत्तिं समालम्ब्य वन्चकैर्वन्चितं जगत् ।

कौटिल्य कुशलैः पापैः प्रसन्नं कश्यलाशयैः । ।ज्ञाना।

मायाचारी में कुशल, मलिन अभिप्राय वाले, पापी ठगों के द्वारा यह प्रसन्न स्वच्छ जगत् बगुला जैसी भक्ति का अवलम्बन लेकर ठगा गया है।

योगस्य कायवाङ्मनो लक्षणस्या वक्रताऽर्जव मित्युच्यते । चा.सा।

मन, वचन, काय इन तीनों योगों को सरल रखना छल कपट न करना आर्जव कहलाता है।

माया चारोत्व इत्थीणं ।

मायाचारी, स्त्रियों में स्वभावता पायी जाती है।

आत्मनः कुटिल भावो माया निकृतिः । स.सि./६/१६/३३४/२

आत्मा का कुटिल भाव माया है इसका दूसरा नाम निकृति है।

स्वहृदय प्रच्छादार्थमनुष्ठानं माया । ध./१२/४,२,८,८/२८३/७

अपने हृदय के विचारों को छिपाने की जो चेष्टा की जाती है उसे माया कहते हैं।

गुप्त पापतो माया । नि.सा./ता.वृ./११२

गुप्त पाप से माया होती है।

मायावी मनुष्यों का तप, धर्म तथा व्रत आदिक छोटे द्रव्य के समान है यही नहीं उनका सारा अनुष्ठान निष्फल होता है।

बंधुओं! आज हम धर्म की तीसरी पायरी की ओर बढ़ रहे हैं। तृतीय पायरी है- 'उत्तम आर्जव धर्म' सर्वार्थसिद्धि में पू. आचार्य समंतभद्र महाराज ने कहा है - "ऋजुर्भावः आर्जवः" अर्थात् ऋजुता, सरलता या कुटिलता का अभाव आर्जव धर्म है जब हम कुटिलता का त्याग कर जीवन में सरलता को अपना लेते हैं तभी आर्जव धर्म होता है। अन्य शास्त्रों में भी आचार्यों ने आर्जव धर्म के स्वरूप को बतलाया है पू. आचार्य कुंदकुंद महाराज वारसाणुपेक्खा में कहते हैं -

मोत्तूण कुडिल भावं णिम्मल हि दएण चरदि सो समणो ।

अज्जव धम्मं तइयो तस्स दु संभवदि णियमेण । ।वा.अणु.७३

जो मुनि कुटिल भाव को छोड़कर निर्मल हृदय से आचरण करता है उसे नियम से आर्जव धर्म होता है।

योगस्यावक्रता आर्जवम् । स.सि. ९/६/४१२/६

योगों का वक्र न हो ना आर्जव है ।

वाङ्.मनः काय योगानाम् वकृत्वं तदार्जवम् । त.सा.

मन, वचन, काय रूप योगों की जो अवक्रता है वह आर्जव धर्म है ।

रङ्धुई कवि आर्जव धर्म की महिमा का गान करते हुए पूजन की जयमाला में कह रहे हैं

आर्जवं स्वर्ग सोपानं कौटिल्यादिविवर्जितम् ।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥११॥

आर्जव धर्म स्वर्ग का सोपान है और कुटिलता से रहित है । मैं भक्तिपूर्वक उसकी प्राप्ति के लिए बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ ।

कौटिल्य अर्थात् कुटिलता जिसका अर्थ है मन में कुछ, वचन में कुछ व शारीरिक चेष्टा कुछ । कुटिल व्यक्ति दिखता कुछ है और होता कुछ है इसलिए उसकी मन, वचन व काय की चेष्टा में अंतर पाया जाता है ।

पू. आचार्य कार्तिकेय महाराज ने अपने कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में कहा भी है -

जो चिंतेइ ण वंकं, ण कुणादि वंकं ण जंपदे वंकं ।

ण य गोवदि णिय दोसं, अज्जव धम्मो हवे तस्स ।।का.अ.३९६।।

जो मुनि कुटिल विचार नहीं करता, कुटिल कार्य नहीं करता और कुटिल बात नहीं बोलता तथा अपने दोष नहीं छिपाता उसके आर्जव धर्म होता है ।

जिसके मन में मायाचार नहीं है, जिसके कर्म में मायाचार नहीं है और जिनकी बातों में मायाचार नहीं है अर्थात् जो मन में विचारता है, वही वचन से कहता है और वही काय से करता है, वह आर्जव धर्म का धारी है क्योंकि मन, वचन, काय की सरलता का नाम आर्जव धर्म है तथा जो अपने अपराध को नहीं छिपाता, त्रुतों में जो अतिचार लगते हैं, उनके लिए अपनी निंदा करता है और प्रायश्चित्त के द्वारा उनकी शुद्धि करता है, वह आर्जव धर्म का धारी है । वास्तव में सरलता ही गुणों की खान हैं, सरल व्यक्ति का सम्मान विद्वान भी करता है । सरल, सहज स्वभावी का ही कल्याण होता है परंतु मायावी का कोई भी विश्वास नहीं करता तथा वह मरकर तिर्यच गति में जन्म लेता है ।

आज के समय में हम देखते हैं कि व्यक्ति के अंदर कदम-कदम पर कुटिलता

छिपी है व्यक्ति कुटिलता में ही कुशलता मानता है, लेकिन यह स्वयं को बहुत बड़ा धोखा देना है। अपने कुरूप को छिपाने के लिए तुम ऊपर से पाउडर लगाकर सुंदर दिखना चाहते हो तो भैया! कोयले को कितना भी साबुन लगाओ परंतु वह कभी सफेद नहीं हो सकता। छिपाने की चेष्टा ही व्यर्थ है। No.2 की वस्तु में No.1 का label लगाने से वह No.1 की नहीं हो सकती। यदि गधा शेर की खाल को ओढ़ ले तो वह शेर नहीं कहा जा सकता। गधा, गधा ही रहेगा वह शेर नहीं हो सकता। अंततः वह असली रूप में प्रकट हो ही जाता है। एक बार की घटना है कि एक बार एक गधा, शेर की खाल ओढ़कर शेरों के बीच पहुँच गया और इतनी चालाकी से पहुँचा कि शेर भी नहीं समझ पाये कि यह गधा है। एक बार दूसरे जंगल से एक शेर आया, उसने जोर से दहाड़ लगायी तो शेर के समूह में छिपा वह गधा जो शेर की खाल पहने था उसने एक छलांग लगा दी जिससे उसकी खाल अलग हो गई और वह अपने असली रूप में आ गया।

इस प्रकार की जो प्रवृत्तियाँ है वही मायाचारी है छल है। आप बहुत से व्यक्तियों के बीच तो जाप करते हैं और जब सब चले जाते हैं तो सो जाते हैं यही तो मायाचारी है। छिपकर पाप करते हो। परंतु ध्यान रखना कोई हमारे दुष्कर्म देख पाये या न देख पाये परंतु आप स्वयं तो देख ही रहे हैं। यह स्वयं के साथ छल है छल के साथ आप लौकिक प्रशंसा तो पा सकते हो परंतु पारमार्थिक उपलब्धि कुछ भी नहीं होती। पारमार्थिकता के नाम पर आप जीरो ही रहेंगे। छल के साथ किया गया तप, व्रत आदि सब व्यर्थ हो जाता है। इसी बात को शास्त्रों में भी आचार्यों ने समझाया है। मायाचारी के दोष बताते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज ने अपने भगवती आराधना ग्रंथ में कहा है

जध कोडिसमिद्धो वि ससल्लो ण लभदि सरीर णिव्वाणं ।

माया सल्लेण तहा ण णिव्वुदि तव समिद्धो वि ।।भ.आ.१३७६

जैसे एक कोटि धन का स्वामी होने पर भी यदि शरीर में कील काँटा घुसा हो तो शारीरिक सुख नहीं मिलता। उसी प्रकार तप से समृद्ध होने पर भी यदि अन्तर में मायारूपी शल्य घुसा है तो मोक्ष लाभ नहीं हो सकता।

होदि य वेस्सो अप्पच्चइदो तध अवमदो य सुजणस्स ।

होदि अचिरेण सत्तू णीयाणवि णियडिदोसेण ।।भ.आ.१३७७

माया दोष से मनुष्य सबके द्वेष का पात्र होता है, उसका कोई विश्वास नहीं करता। सुजन भी उसका अपमान करते हैं। वह शीघ्र ही अपने बन्धु-बान्धवों का भी शत्रु बन जाता है।

सुभाषित रत्नावली में पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज कहते हैं

कूट द्रव्यमिवासारं तपोद्यमोव्रतादिकम् ।

मायाविनामनुष्ठाणं सर्वं भवति निष्फलम् ॥१०४॥

जिस प्रकार खोटा द्रव्य होने से वह न तो दान के योग्य होता है, न ग्रहण करने के योग्य होता है अर्थात् वह खोटा द्रव्य असार ही होता है। उसी प्रकार मनुष्यों का मायासहित किया गया तप, धर्म, दयादि निष्फल होते हैं। इसलिए इस लोक व परलोक में दुखदायी कपट सहित, दुर्गति का कारण ऐसी मायाचारी से रहित मनुष्यों को तप, धर्मादि करना चाहिए। क्योंकि माया रहित तप आदि सुख ही के कारण हो सकते हैं क्योंकि मायाचारी जीव की प्रवृत्ति कुटिल होती है। उसके मन में अन्य, वचन में अन्य तथा काय से अन्य ही प्रवृत्ति होती है। ऐसी माया युक्त प्रवृत्ति जो कि तिर्यञ्च गति का कारण है उसे त्याग कर आर्जव गुण सहित धर्माचरण करना चाहिए।

परंतु कुछ व्यक्ति तो धर्म व गुरु के साथ भी कपट करने से नहीं चूकते। व्यक्ति गुरु की निंदा करने तैयार रहते हैं। आप सोच रहे थे ये व्यक्ति अच्छे हैं कभी शिकायत नहीं करते परंतु कब तक ? जब तक आपकी उनसे बन रही है परंतु जिस दिन अनबन हो जायेगी और वह गुरु तक आपकी शिकायत पहुँचा देगा तो सोचिए आपकी क्या हालत होगी ? आप गुरु के विश्वास व आत्मीयता से गिर जाओगे। छल कपट करने वाला तत्क्षण में तो अच्छा दिखता है परंतु छल प्रकट होते ही सबकी नजरों से गिर जाता है। सामने वाला भी यही सोचेगा कि जो आज गुरु के साथ छल कर रहा है वह कल मेरे साथ भी छल करेगा। अज्ञानी व्यक्ति मायाचारी में सुख मानता है परंतु ज्ञानी व्यक्ति घबरा जाता है वह सोचता है नहीं-नहीं मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा। गुरु से छल करने वाले के विषय में कहा है

गुरु संग कपट, मित्र संग चोरी ।

या हो निर्धन, या हो कोड़ी ॥

जो गुरु के साथ कपट करता है वह निर्धन हो जाता है उसकी सारी अच्छाईयाँ समाप्त हो जाती है। प्रतिष्ठा/सम्मान गिर जाता है और अंततः वह कुष्ठ जैसे भयानक रोग का शिकार हो जाता है।

माया को एक 'कषाय' कहा है। व्यक्ति अपनी स्वार्थ की खातिर गिरगिट की तरह रूप बदलते हैं। यदि तुम्हारे रूप इसी तरह बदलते जायेंगे तो तुम्हारी क्या दशा होगी ? जब परिस्थिति आती है तो व्यक्ति भक्त बन जाते हैं, समर्पित हो जाते हैं,

लेकिन जब आपका स्वार्थ निकल जाता है तो आपका अंदर का रूप प्रगट हो जाता है आप पहले तो कुछ और ही दिख रहे थे, हमें इनसे ऐसी आशा नहीं थी कि ये ऐसे निकलेंगे। ये शब्द व्यक्तित्व पर कुठाराघात करने वाले हैं। ध्यान रखना! कष्ट, तकलीफ सहन करना अच्छा है पर दगा देना अच्छा नहीं है।

दगा किसी का सगा नहीं, न मानो तो करके देखो।

जिस-जिस ने भी किया दगा है, जाकर उसका घर देखो।।

व्यक्ति दूसरों को गिराने के लिए गड्ढा खोदता है, परंतु ध्यान रखें! उस गड्ढे में दूसरा गिरे या न गिरे परंतु गिराने वाला स्वयं गिर जाता है, बाहर गड्ढे में तुम गिरो या न गिरो पर कर्म रूपी गड्ढे में तो अवश्य ही गिर जाओगे।

अतः अपना जीवन देकर भी विश्वास नहीं खोना चाहिए। जीवन तो फिर भी मिल सकता है परंतु विश्वास टूटने के बाद फिर प्राप्त नहीं होता, कितना भी प्रयास करे और कदाचित् पुनः विश्वास जग भी गया तो उसमें टूटे धागे की तरह गाँठ अवश्य पड़ जाती है। अतः समझदारी इसी में है कि अपने विश्वास को कायम रखें। क्योंकि जहाँ विश्वास नहीं वहाँ कुछ भी नहीं। 'विश्वास' न तो कहने का विषय है न ही बताने का। वास्तविकता में वचनों से विश्वास को कहना अलग बात है और विश्वास होना ये अलग बात है। विश्वास वचनों की अपेक्षा नहीं रखता। बाहर की वस्तुओं को तो खरीदा जा सकता है परंतु विश्वास को नहीं खरीदा जा सकता। विश्वास सभी पर नहीं किया जा सकता, विश्वासनीय व्यक्ति पर ही विश्वास किया जा सकता है और विश्वासनीय देव - शास्त्र - गुरु है। जिनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। जिनकी बराबरी पर हम दूसरों को नहीं बिठा सकते। गुरु से यह बात मत कहना। उत्तर मिला - क्यों न कहूँ अवश्य कहूँगा, क्योंकि देव-शास्त्र-गुरु ही मेरी दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ हैं अतः उनके प्रति श्रद्धा से न तो स्वयं गिरना और न ही दूसरों को गिराना।

'आर्जव धर्म' का धारी विश्वास रखता है कि जो गुरु का नहीं हुआ वह तुम्हारा क्या होगा, वह एक न एक दिन तुम्हें संकट में डाल देगा। तथा स्वयं छल करेगा तो कर्म तुझे ऐसे गड्ढे में डाल देंगे कि फिर सगे साथी भी काम नहीं आयेंगे। अतः छल-कपट को छोड़ आर्जव धर्म को अपनाओ क्योंकि आर्जव धर्म की बड़ी महिमा है।

कविवर रङ्घुई कहते हैं

धम्महु वर लक्खणु अज्जउ थिर मणु दुरिय विहंऽणु सुह जणणु।

तं इत्थ जि किज्जइ तं पालिज्जइ तं गिसु गिज्जइ रवय जणणु।।२।।

‘आर्जव’ धर्म का श्रेष्ठ लक्षण है, वह मन को स्थिर करने वाला है, पापनाशक है और सुख को उत्पन्न करने वाला है, इसलिए उसे अपने आचरण में लाओ, उसी का पालन करो और उसी का श्रवण करो।

जारिसु मणि चिंतिज्जइ, तारिसु अण्णहं पुणु भासिज्जइ।

किज्जइ पुणु तारिसु सुह संचणु, तं अज्जउ गुण मुणहु अवंचणु।।३।।

अपने मन में जैसा विचार करे, वही दूसरों से कहे और उसी प्रकार कार्य करे तभी सच्चा आर्जव धर्म होगा।

कविवर रङ्घुई ने आर्जव धर्म को मन को स्थिर करने वाला कहा है तो वह कब संभव है - जैसे दूध बर्तन में तभी टिक सकता है जबकि बर्तन को पहले से मांझा हो, यदि गंदे बर्तन में दूध रख दोगे तो दूध फट जायेगा अर्थात् दही बन जायेगा, अतः दुष्ट भाव रूपी गंदगी को अपने मन रूपी पात्र से अलग करना अनिवार्य है तभी आर्जव धर्म रूपी दूध उस पात्र में ठहर सकेगा। अतः सुख को उत्पन्न करने वाले उस आर्जव धर्म का ही श्रवण व पालन करों।

छल-कपट की बातें करने से तो कर्म का आस्त्रव होगा, आर्जव धर्म को ही कहो, उसी को करो तथा उसी का चिंतन करो जिससे शुभ कर्म का आस्त्रव बंध होगा, आर्जव धर्म अवंचकता लाता है और छल-कपट वंचना कर देता है। जिस दिन आपका छल-कपट प्रकट होगा, आपकी दृष्टि नीची हो जायेगी। या तो मौन रहिए या फिर “स्पष्ट वक्ता न वंचिता” मर्यादा व विवेक, गंभीरता के साथ यथाविधि बोल दीजिए। अतः बोलो तो यथा अवसर बोलो अन्यथा -

काने से काना कहो, तुरतई जे है रुठ।

धीरे-धीरे पूछ लो, कैसे गई है फूट।।

यदि किसी के नेत्र नहीं हैं तो उसे काना मत कहो अपितु विवेक के साथ प्रेम से पूछो क्या हो गया, भैया ? कैसे नेत्र दोष आया ? किसी कवि ने कहा है -

तुम खिलो धूल में, शूल में भी खिलो,

तुम बुराई किसी की कभी न करो।

बात ऐसी करो, शब्द हो मिश्री भरे,

औ अधर से निकल कर झरें फूल से।।

आगे कविवर रङ्घुई कहते हैं -

माया सल्लु मणहु गिस्सारहु, उज्जउ धम्मु पवित्तु वियारहु ।

वउ तउ मायावियहु गिरत्थउ, अज्जउ सिव पुर पंथहु सत्थउ ॥४॥

हे योगी ! हे ज्ञानी ! हे विवेकी ! मायाशल्य के लिए तुम मन से निकाल दो, कब तक गंदगी मन में रखे रहोगे । एक भड़भड़िया किस्म के लोग होते हैं जो मन में कुछ भी नहीं रखते, उनका मन साफ होता है । दूसरे वे लोग होते हैं जो गांठ बांध कर रखते हैं वे अच्छे नहीं है उनका मन काला होता है । इस विषय में एक (कहावत) लोकोक्ति प्रसिद्ध है -

तन उजरा मन सांवला, यह बगुला की टेक ।

या सो तो कौआ भला, भीतर बाहर एक ।।

बाहर से व्यक्ति अच्छा, धार्मिक, ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी दिखता है परंतु मन अच्छा नहीं तो वह बगुले की तरह है । एक बार राम, लक्ष्मण और सीता विहार करते-करते एक वन से निकले तो उनकी दृष्टि एक बगुले पर पड़ी लक्ष्मण जी उस बगुले से बड़े प्रभावित हो गये और बोले भैय्या ! देखो तो यह उज्जवल वर्ण का बगुला एक टांग से खड़ा होकर ध्यान कर रहा है । कितनी एकाग्रता है । तब रामचंद्र जी कहते हैं -लक्ष्मण तुम इतने उतावले क्यों होते हो ? जरा ध्यान से देखो ! यह करता क्या है ? -

उज्जवल वर्ण गरीब गति, एक टांग मुख ध्यान ।

देखत लागत भगत सम, निपट कपट की खान ।।

यह उज्जवल, धवल वर्ण का बगुला जो तुम्हें गरीब/दीन नजर आता है कुछ समय यहाँ बैठकर ध्यान से देखो । लक्ष्मण जी कुछ समय तक बैठे रहे तो देखते हैं जो दीन दिख रहा था उस बगुले ने एक मछली को पकड़ा और खा लिया ।

देखत लागत भगत सम, निपट कपट की खान ।

भक्त की तरह दिखता तो है परंतु वह भक्त नहीं अपितु कपट की खान है ।

बंधुओं ! इस छल-कपट को निकाल कर पवित्र 'आर्जव-धर्म' को धारण करो । यदि तुमने माया शल्य को नहीं निकाला तो ब्रती नहीं हो पाओगे । क्योंकि पू. आचार्य उमास्वामी महाराज ने अपने तत्त्वार्थ सूत्र में ब्रती की परिभाषा देते हुए कहा है -

‘निःशल्यो ब्रती’

माया, मिथ्या और निदान तीन प्रकार की शल्य होती है । और छल पूर्वक किया गया तप, व्रत और संयम सब व्यर्थ हो जाता है । इसलिए माया शल्य का त्याग कर मन को सरल बनाना चाहिए ।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं कि मायाचारी से कोई पाप को छिपाना चाहे तो वह भी अधिक समय तक नहीं टिकता, शीघ्र ही प्रकट हो जाता है। पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज कहते हैं-

मायां करोति यो मूढ इन्द्रियादिकसेवनम्।

गुप्तं पापं स्वयं तस्य व्यक्तं भवति कुष्ठवत्।।१०४।।

जो अज्ञानी मनुष्य इंद्रिय आदि की सेवा में माया करता है उसका गुप्त पाप कुष्ठ रोग के समान स्वयं प्रगट हो जाता है। जिस प्रकार कोड़ी पुरुष का कोड़ छिपाने पर भी बदबू आदि के कारण दृष्टिगोचर हो जाता है, उसी प्रकार संसारी प्राणियों के द्वारा की गई मायाचारी निश्चित ही प्रकट हो जाती है।

छल, कपट के माध्यम से पाप उपार्जन होता है। अतः कभी भी पाप वचन भी नहीं बोलना चाहिए तथा पाप क्रियाओं से भी बचना चाहिए। और यह तभी संभव है जबकि हम अपने जीवन में सरलता लाये। परंतु कुछ लोगों का ऐसा सोचना रहता है कि अधिक सरलता ठगाई जाती है, ज्यादा सरल व्यक्ति लुट जाता है, उसे कुछ प्राप्ति नहीं होती, वह बेकाम है। लौकिकता में ऐसा कहा भी जाता है।

अधिक सरलता सुख नहीं, देखो विपिन मंझार।

सीधे विरवा कट गये, टेड़े खड़े हजार।।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं यह आपका भ्रम है कि सरलता ठगाई जाती है। हो सकता है कि जो सरल हो उसे जीवन में कष्ट उठाना पड़े, तकलीफ उठाना पड़े परंतु अंततः परिणाम अच्छा ही निकलता है। परंतु सरलता के साथ ज्ञान और विवेक भी होना चाहिए, भौंदू पन नहीं होना चाहिए। कब कैसे उठना, बैठना या बोलना यह विवेक होना चाहिए, भौंदू लोगों के पास धर्म नहीं होता। सरलता कट भी जायेगी तो भी अमर रहेगी, सरलता को सूली पर भी चढ़ा दिया जाए तो वह भी सिंहासन बन जायेगा।

सुदर्शन सेठ की धर्मपरायणता व सरलता सर्वत्र प्रचलित है। रानी, सेठ पर विषयासक्त थी अतः अपने अभिप्राय को सिद्ध करने हेतु वह अपनी दासी के माध्यम से अष्टमी के दिन वृक्ष की नीचे साधनारत सेठ सुदर्शन को अपने महल में उठवा लेती है अनेकों प्रकार से उसे डिगाने हेतु कुचेष्टायें करती है। परंतु आत्मध्यान में दृढ़ चित्त सेठ किंचित भी विचलित नहीं होते फलस्वरूप वह त्रिया-चरित्र रचती है और सेठ पर झूठा आरोप लगाकर राजा के समक्ष प्रकट करती है। राजा, रानी की बातों से प्रभावित हो सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़ाने की आज्ञा देते हैं। सेठ सुदर्शन तो अभी भी प्रभु के

ध्यान में लीन थे, सूली पर जैसे ही सेठ सुदर्शन को चढ़ाया जाता वह उनके सत्य, सरलताशील के प्रभाव से सिंहासन में परिवर्तित हो जाती है और सेठ सिंहासनारूढ़ हो जाते हैं। जो छल, कपट करता है दूसरों को धोखा देता है उसका छल अधिक समय तक नहीं टिकता।

काष्ठांगार ने महाराजा सत्यंधर को धोखा दिया। सारे खजाने, सैनिकों को हाथ में ले लिया व सत्यंधर पर आक्रमण कर दिया। राजा पराजित जरूर हुआ परंतु पुत्र जीवन्धर ने काष्ठांगार को पराजित कर दिया। धोखा अधिक समय तक नहीं चल सकता। धोखा देने वाले का नाम, वंश भी समाप्त हो जाता है।

जो व्यक्ति कृतघ्न होते हैं वे तो अपने उपकारी तक को धोखा देने से नहीं चूकते। एक कथा प्रसिद्ध है - एक बार एक चूहे का भक्षण करने के उद्देश्य से एक सर्प उसकी ओर बढ़ा। चूहा, सर्प को अपनी ओर आता देख भागने लगा। आगे-आगे चूहा, पीछे-पीछे सर्प। दौड़ते-दौड़ते चूहे को रास्ते में हंस दिखा। बड़े विनीत भाव से वह बोला - हे हंसराज! मेरी रक्षा कीजिए। हंस सोचता है शरणागत की रक्षा करना एक श्रेष्ठ धर्म है। अतः वह चूहे को अपने पंखों में छिपा लेता है। पीछे से जब सर्प आता है तो हंस उसे लौटा देता है। इधर चूहा उसके पंखों में छिपा बैठा अपनी कुतरने की आदत से लाचार हो हंस के सारे पंख कुतर डालता है। इतने में एक शिकारी वहाँ आ जाता है और हंस को मारने हेतु अपने तरकश से बाण निकाल लेता है। हंस सोचता है मैं उड़ जाऊँगा और अपनी रक्षा स्वयं कर लूँगा। जैसे ही वह उड़ान भरता है जमीन पर धड़ाम से गिर जाता है।

बंधुओं! यदि तुम्हें कोई शरण प्रदान करें तो धर्म कहता है कि कभी भी उसके पंख नहीं काटना। चूहे ने हंस के साथ अच्छा नहीं किया। और सर्वत्र वह निंदा को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार यदि (कोई मनुष्य) तुम अपने मालिक, माता-पिता, गुरु या स्वामी के साथ ऐसा व्यवहार करोगे तो कोई भी तुम्हारी करनी को अच्छा नहीं कहेगा, सर्वत्र निंदा के भाजक ही बनोगे, अतः ऐसा कार्य नहीं करना जिसमें दगा छिपा हो। 'आर्जव धर्म' शिवपुर का मार्ग प्रशस्त करता है ओर छल-कपट संसार का। आगे रङ्गधुई कवि कहते हैं।

जत्थ कुडिल परिणामु जइज्जइ, तहिं अज्जउ धम्मू जि संपज्जइ।

दंसण - णाण सरुव अखंडउ, परम अतिदिय सुक्ख करंडउ।।५।।

जहाँ कुटिल परिणाम जीत लिये जाते हैं अर्थात् कुटिल परिणाम का त्याग हो जाता है,

व्यक्ति छल-कपट का त्याग कर देता है वह ही आर्जव धर्म का संपादन करता है उसी का सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान अखंड होता है ऐसे व्यक्ति का हृदय परम सुख, अतीन्द्रिय सुख का पिटारा होता है। छली-कपटी को सदैव भय बना रहता है। दीनता भरी रहती है यदि प्रगट हो जाए तो व्यक्ति विश्वास से गिर जाता है इसलिये कभी भी किसी के साथ छल नहीं करना चाहिए। छल से कुछ प्राप्त भी हो जाए तो वह १३ है, जो १९३ लाभ से वंचित कर देता है निश्छल भावना से भले ही ऐसा प्रतीत हो कि हम वंचित रह गये परंतु वास्तविकता तो यह है कि १००३ उपलब्धि निश्छल भावना से ही होती हैं।

एक बार एक स्कूल में प्रत्येक छात्र को ५-५ लड्डू मिलने वाले थे। एक बच्चे का मन ललचाया उसने धीरे से एक लड्डू जेब में डाल लिया, परंतु उसे ऐसा करते हुए मास्टर ने देख लिया अब क्या था मास्टर जी ने चार चाटे लगाये और लड्डू छुड़ा लिया और स्कूल से भी निकाल दिया

छल से व्यक्ति सर्वत्र अपमान ही पाता है। जबकि आर्जव धर्म को धारण करने वाला सर्वत्र सम्मान पाता है और आर्जव धर्म के धारण करने वाले के व्रत, तप, संयम सब संवर व निर्जरा के हेतु बनते हैं। सरल व्यक्ति ही अपने पापों की गुरु के समक्ष आलोचना कर सकता है। वह सदैव प्रायश्चित्त लेने के लिए तत्पर रहता है। जब तक गुरु के समक्ष प्रायश्चित्त नहीं ले पाता वह भारी पन महसूस करता है और प्रायश्चित्त लेने पर वह हल्का हो जाता है। आगम में भी कहा है कि छल रहित होकर निश्छल भाव सहित गुरु के समक्ष आलोचना करनी चाहिए। छल रहित व्यक्ति का मन पवित्र होता है एक दार्शनिक ने कहा भी है -

"The heart of a Innocent person is like a flower which have very good smell of Innocence or politeness & by these time of smell he is liking by others"

एक सरल प्रकृति के व्यक्ति का हृदय/मन पुष्प की तरह होता है जिसमें सीधेपन, नम्रता, मृदुता की खुशबू होती है। और उसकी यह खुशबू ही उसे सबका प्रिय बना देती है। अर्थात् सरल स्वभावी को सभी पसंद करते हैं। रङ्धुई कवि कह रहे हैं -

अपिं अप्पउ भवहु तरंडउ, एरिसु चेयण भाव पयंडउ ।

सो पुणु अज्जउ धम्मे लम्भइ, अज्जवेण वइरियमणु खुम्भइ ॥६॥

तुम्हें संसार से पार कोई दूसरा नहीं करेगा, आपको स्वयं प्रयत्नशील होना पड़ेगा। देव, शास्त्र व गुरु तो माध्यम है चलना तो स्वयं को ही पड़ेगा तभी आप मंजिल को प्राप्त कर

सकोगे, आत्मा ही आत्मा को संसार से पार करा सकती है, इस प्रकार का प्रचण्ड चैतन्य भाव है जो आर्जव धर्म से ही प्राप्त होता है। “आर्जव भाव से बैर भाव भी नष्ट हो जाता है।”

सरल व्यक्ति क्षमाशील होता है, उसके जीवन में कोमलता रहती है जबकि वक्र हृदय वाले के अंदर बैर भाव समाप्त नहीं होता, वह कभी पिघलता नहीं है, पिघलता वह है जिसके पास सरलता होती है। “सरल बनोगे तो तरल रहोगे और तरल होओगे तो तैरते रहोगे और जो तैरता रहेगा वही किनारे को पायेगा।” जो सरल नहीं वह संसार में ही रहता है अतः भव सिंधु से पार होना है तो आर्जव धर्म को अपनाओ।

जो व्यक्ति छली कपटी होता है वह कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। कहा भी है

"A deceitful person every time get defeated. He can't succeed in his life because he all time do fraud for money."

एक धोखेबाज व्यक्ति हमेशा मात ही खाता है वह कभी जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर पाता क्योंकि वह पैसों के लिए हर समय कपट/छल करता है।

"Fraud is very big sin & its result is not good or we say very bad."

छल एक बहुत बड़ा पाप है और छल का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता अपितु बहुत बुरा होता है। इसलिए आप छल/कपट को छोड़ जीवन में सरलता लाओ। जीवन को आर्जव धर्म से सजाओ। कविवर रङ्घुई आगे कहते हैं -

अज्जउ परमप्पउ गय -संकप्पउ चिमिन्तु जि सासउ अभउ।

तं गिरु झाइज्जइ संसउ हिज्जइ पाविज्जइ जिहिं अचल पउ।।७।।

‘आर्जव धर्म’ परमात्म -स्वरूप है। अर्थात् यह धर्म जिसके पास है वह परमात्मा है। सरल व्यक्ति परमात्मा तो कुटिल व्यक्ति पापात्मा है। ‘आर्जव’ में कोई संकल्प-विकल्प नहीं है जबकि छलकपट में संकल्प-विकल्प होते हैं, आर्जव धर्म से शाश्वत सुख मिलता है, हम दूसरे की रक्षा करते हैं और दूसरा हमारी। हमेशा ‘आर्जव धर्म’ का ही ध्यान करना चाहिए तथा कपट भाव को दूर से ही छोड़ देना चाहिए। क्योंकि पू. आचार्य उमास्वामी महाराज ने अपने तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ में कहा है -

“माया तैर्यग्योनस्य” ।

अर्थात् मायाचारी करने से तिर्यञ्च गति का बंध होता है। यदि कोई मनुष्य आयु का

बंधक भी है तो वह छल-कपट के प्रभाव से स्त्री होगा, पुरुष पर्याय नहीं पा सकेगा।

पू. आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने अपने प्रवचनसार ग्रंथ में कहा कि मायाचारी स्त्रियों में स्वभाव से पायी जाती है हमें अपने सम्यक् चिंतन के द्वारा छल-कपट को दूर करना चाहिए तभी हमें अचल, अविनाशी, निश्चल, निश्छल आत्मस्वरूप की तथा शाश्वत सुख/आनंद की प्राप्ति होगी। अतः छल को छोड़ विनय के साथ 'आर्जव-धर्म' को धारण करो। यदि कर्मोदय वश छल हो भी जाये तो उस कचरे को सम्यक - चिंतन रूपी झाड़ू से झाड़ते जाइए। पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज ने अपने 'सुभाषित-रत्नावली' ग्रंथ में कहा भी है-

आर्जवं सकल धर्म कारणं स्वर्गमुक्ति सुख साधन हेतुम्।

प्राप्य यान्ति मुनयः सुरालयं त्वं सदा कुरु तमार्जवभावम्।।

'आर्जव' समस्त धर्मों का कारण है। स्वर्ग और मुक्ति सुख की प्राप्ति का कारण है। उस आर्जव धर्म को प्राप्त कर मुनिजन स्वर्गों को प्राप्त होते हैं इसलिए तुम हमेशा उस 'आर्जव-धर्म' की भावना करो। अर्थात् उसे पाने का हमेशा यत्न करो।

“बोलिए महावीर भगवान की जय”



“शुचिता से याओ शौच-धर्म”

कंखा भावणिवितिं किच्चा वेरगग भावणा जुत्तो ।

जो वट्टदि परम मुणी तस्स दु धम्मं हवे सोच्चं ।।वा.अणु.७५

जो मुनि उत्कृष्ट कांक्षाभाव से निवृत्ति कर वैराग्य भाव से युक्त रहता है उसके शौच धर्म होता है।

प्राणेशमनु मायाम्बां मरिष्यन्तीं बिलम्बयन् ।

लोभो निशम्यते येन तद् भजेज्छौच देवतम् ।।अन.धर्मा.

अपने प्रति मोह के साथ मरने की इच्छुक माया रूपी माता को मरने से रोकने वाला लोभ जिनके द्वारा निगृहीत किया जाता है। उस शौच रूपी देवता की आराधना करनी चाहिए।

परिभोगोपभोगत्वं जीवितेन्द्रिय भेदतः ।१६ ।

(चतुर्विधस्य लोभस्य निवृत्तिः शौच मुच्यते ।१७ ।त.सा.)

भोग व उपभोग का, जीने का, इन्द्रिय विषयों का इन चारों प्रकार के लोभ के त्याग का नाम शौच धर्म है।

अनुग्रह प्रवण द्रव्याद्यभिकाङ्क्षावेशो लोभः

(कृमिराग कज्जल कर्दम हरिद्राराग सदृशश्चतुर्विधः ।रा.वा.८/९/५/५७४/३२)

धन आदि की तीव्र आकांक्षा या गृद्धि लोभ है। यह कृमिराग रंग, काजल, कीचड़ और हल्दी के रंग के समान चार प्रकार का है।

आयुवृद्धि क्षयोत्कर्ष हेतुं कालस्य निर्गमम् ।

वान्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनं ।।इष्टो.१५

समय के व्यतीत होने को, आयु के क्षय और धन की वृद्धि का कारण मानने वाले धनवान् पुरुषों को अच्छी तरह अपने जीवन से भी अधिक धन का पाना इष्ट है।

जहा लाहो तथा लोहो, लाहा लाहो पवड्ढई ।

दो मासकयं कज्जं कीडीए वि न निट्टियं ।।स.सु.

जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे लोभ होता है लाभ से लोभ बढ़ता जाता है दो माशा सोने से पूर्ण होने वाला कार्य करोड़ों मुद्राओं से भी पूर्ण नहीं होता है।

लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।

लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ।।स.सु.

लोभ से क्रोध होता है काम होता है लोभ से मोह (प्रेम) का नाश होता है लोभ पाप का कारण है।

लोभो तणेवि जादो जणेदि पाव मिदरत्थ किं वच्चं ।

लगिदमउड्ढादि संगस्स वि हु ण पावं अलोहस्स ।।भ.आ१३८४

तृण से भी हुआ लोभ पाप को उत्पन्न करता है तब सारवान वस्तु में हुए लोभ का तो कहना ही क्या है ? जो लोभ कषाय से रहित है उसके शरीर पर मुकुट आदि परिग्रह होने पर भी पाप नहीं होता।

सव्वे वि गंथ दोसा लोभकषायस्य हुंति णादव्वा ।

लोभेण चेव मेहुण हिंसा लिय चोज्जमाचरदि ।।भ.आ.१३८७

पूर्व में परिग्रह के जो दोष कहे हैं वे सब दोष लोभ कषाय वाले के अथवा लोभ नामक कषाय के जानना। लोभ से मनुष्य हिंसा, झूठ, चोरी और मैथुन करता है अतः समस्त पाप क्रियाओं का प्रथम कारण लोभ है।

लोभश्चतुः प्रकाराः- जीवन लोभ आरोग्य लोभ इन्द्रिय लोभ उपभोग लोभश्चेति, स प्रत्येकं द्विधा भिद्यते स्वपर विषयत्वात्। लोभ ४ प्रकार का है -जीवन, आरोग्य, इन्द्रिय, उपभोग लोभ। ये चारों भी प्रत्येक स्व-पर विषय के भेद से दो-दो प्रकार है।

जो समस्त सुखों का जनक है, दुःख रूपी सागर से तारने वाला है सद्धर्म रूपी निर्मल रत्नों का उत्कृष्ट सागर है, पापों को अंत करने वाला है, निःस्पृह है, मोक्ष तथा स्वर्ग को वश में करने वाला है, गुणों का भंडार है, तीर्थकरों के द्वारा सेवित है चिंता दुःख और भय आदि से दूर है ऐसे संतोष को धारण कर तुम हमेशा लोभ को छोड़ो।

बंधुओं! आज हम चलते हैं पर्युषण पर्व की बेला में चतुर्थ धर्म की ओर। किन्हीं-किन्हीं आचार्यों ने तो उत्तम सत्य धर्म को तो किन्हीं ने उत्तम शौच धर्म को चतुर्थ स्थान पर रखा है। दोनों कथन अपेक्षाकृत सत्य है। सत्य होगा तभी पवित्रता आ सकती है अथवा पवित्रता के साथ ही सत्य की प्राप्ति होती है। चूंकि क्रोध, मान, माया

और लोभ ये चार कषायें क्रम से हैं चारों कषायों के अभाव से सत्य की प्राप्ति हो सकती है। अतः लोभ के प्रतिरोधी शौच धर्म की बात करेंगे। शुचि अर्थात् पवित्र भावों का नाम शौच है, शुद्धता का नाम - शौच है। पू. आचार्य कार्तिकेय महाराज 'शौच-धर्म' के स्वरूप को बतलाते हुए अपने कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में कहते हैं -

सम-संतोष-जलेण जो धोवदि तिठव-लोह-मल पुंज।

भोयण-गिद्धि विहीणो तस्स स उच्चं हवे विमलं।।का.अनु.३९७

जो सम भाव और संतोष रूपी जल से तृष्णा और लोभ रूपी मल के समूह को धोता है तथा भोजन की गिद्धि नहीं करता उसके निर्मल शौच धर्म होता है। सर्वार्थ सिद्धि में पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं-

प्राकर्ष प्राप्त लोभान्निवृत्तिः शौचम्।स.सि.९/६/४१२/६

प्रकर्ष प्राप्त लोभ का त्याग करना शौच धर्म है। वह शुद्धता कैसे होगी ? तो कवि रङ्घुई कह रहे हैं-

शौचं लोभ विनिर्मुक्तं मुक्ति श्री चित्त रञ्जकम्।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये।१।

लोभ से विनिर्मुक्त अर्थात् त्याग हो जाने पर, अभाव हो जाने पर 'उत्तम-शौच' धर्म उत्पन्न होता है तथा वह शौच-धर्म मुक्ति श्री के चित्त का अनुरंजन करता है अर्थात् जो व्यक्ति 'शौच-धर्म' को पवित्र हृदय से धारण करता है मुक्ति श्री उसके चित्त की अनुरंजक हो जाती है। मोक्ष लक्ष्मी उसका वरण कर लेती है। उस उत्तम शौच धर्म की प्राप्ति के लिए मैं उसकी श्रेष्ठ भक्ति पूर्वक पूजा करता हूँ।

जो श्रावक धर्मात्मा, पाप भीरु होते हैं, पाप से घबराते हैं वे मन, वचन और काय की शुद्धि का ध्यान रखते हैं। इनमें से मनः शुद्धि आभ्यन्तर शुद्धि है तथा वचन और काय की शुद्धि बाह्य शुद्धि है।

मन शुद्धि :- मन में राग, द्वेष, कषाय, वैमनस्यता, ईर्ष्या, गलत भावना आदि का न होना मन शुद्धि है।

वचन शुद्धि :- अशिष्ट, असभ्य, अमर्यादित, अनुचित वचनों का प्रयोग नहीं करना, हास्य सहित अशिष्ट वचन भी नहीं बोलना यह वचन शुद्धि है।

काय शुद्धि :- स्नान पूर्वक शुद्ध वस्त्रों को धारण करना तथा शुद्ध वस्त्र पहनने के उपरांत ध्यान रखें किसी अशुद्ध वस्तु पर पैर न पड़े यदि अपवित्र वस्तु

पर पैर पड़ गया तो फिर काय शुद्धि नहीं रहेगी। लौंग, इलायची खा रहे हैं तो भी काय शुद्धि नहीं मानी जायेगी।

प्रायः श्रावक आहार दान के समय इन शुद्धियों का विशेष रूप से ध्यान रखता है। इन तीनों की शुद्धि ही बाह्याभ्यन्तर शुद्धि कहलाती है। कवि रङ्घुई आगे कहते हैं -

सउच्चु जि धम्मंगउ तं जि अभंगउ भिण्णंगउ उवओगमउ ।

जर मरण विणासणु तिजगपयासणु झाइज्जइ अह णिसि जि धुउ ॥२॥

‘शौच’ धर्म का अंग है, इसका भंग रहित पालन करने से आत्मा से अभिन्न/अभंग, उपयोग मय धर्म का नाम उत्तम शौच-धर्म है। यह जन्म, जरा और मरण का विनाश करता है। क्योंकि यह धर्म भी एक तप है। और बिना तप के कर्मों की निर्जरा नहीं होती। कोई सोचे कि बिस्तर पर बैठे-बैठे जन्म - जरा - मृत्यु का विनाश हो जाए, तो भैया! ‘न भूतो न भविष्यति’। तीर्थंकर भी ककरीली, पथरीली जमीन पर चलते हैं तब कहीं जाकर कर्मों का क्षय होता है। यह उत्तम शौच धर्म तीनों लोकों को केवलज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित करता है। इसका दिन-रात, अहर्निश ध्यान करना चाहिए। रङ्घुई कवि कहते हैं-

अहवा जिणवर पुज्ज विहाणे, णिम्मल फासुय जल कय ण्हाणे ।

तं पि सउच्चु गिहत्थहं भासिउ, ण वि मुणिवरहं कहिउ लोयासिउ ॥३॥

उत्तम शौचधर्म जिनवर की विधि पूर्वक पूजा करने से तथा निर्मल प्रासुक जल से स्नान करने से होता है। किंतु यह लोकाश्रित शौचधर्म गृहस्थों के लिए ही होता है मुनिवरों के लिए नहीं क्योंकि मुनिजन तो अस्नान मूलगुण के धारी होते हैं। आगे कहते हैं कि एकाग्र मन से इस धर्म को अपने जीवन में धारण करें।

भव मुणिवि अणिच्चउ धम्म सउच्चउ पालिज्जइ एयग्गमणि ।

सुह - मग - सहायउ सिव - पय - दायउ अण्णु म चित्तह कि पिखणि ॥७॥

संसार को अनित्य जानकर एकाग्र मन से इस शौचधर्म का पालन करना चाहिए, यह सुख के मार्ग का सहायक है और मोक्षपद को देने वाला है। इसके सिवाय अन्य किसी का क्षणमात्र के लिए चिंतन मत करें।

लोभ कषाय के त्याग से ही शौच धर्म जीवन में आ सकता है। जब तक लोभ है तब तक शौच धर्म नहीं हो सकता। लोभी व्यक्ति प्रायः लौकिकता में अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। कंजूस कहा जाता है, कंजूस की परिणति ऐसी होती है कि यदि घी में

मक्खी गिर जाये तो वे उस मक्खी को भी निचोड़ कर फेंक देता है। लोभी के विषय में पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज ने अपनी सुभाषित रत्नावली ग्रंथ में कहा है-

लोभ शत्रुरतिदुःसहोऽङ्गिनां सर्ववस्तुपरिभक्षणलोलः।

हन्ति लोक स्वजनानपि तस्य चो वशो प्रजति सोऽपि दुर्गतिम् ॥११२॥

तीनों लोकों की वस्तुओं को ग्रहण करने में लंपट तथा अग्नि के समान कभी तृप्त न होने वाला ऐसा लोभ रूपी शत्रु प्राणियों के लिए अत्यंत कठिनता से सहने योग्य है। क्योंकि लोभ रूपी शत्रु इस भव में प्राणियों के प्राण का अपहरण कर लेता है और पराभव में इसके वशीभूत हुआ मनुष्य, नरक एवं तिर्यञ्च गति को प्राप्त करता है। क्योंकि लोभी व्यक्ति दारुण दुःख पाता है जैसा कि कहा है -

“लोभी दुःख प्राप्नोति दारुणम्।”

क्योंकि वह धन को न तो भोग सकता है और न ही दान दे सकता है बल्कि वह उस धन की सिर्फ सर्प के समान रक्षा ही करता है। अतः संत जन यही कहते हैं कि लोभ-लालच नहीं करना चाहिए क्योंकि जो लोभ करता है वह दुर्गति के गर्त में गिर जाता है।

एक बार एक दर्जी धन कमाने के लिए परदेश जा रहा था। रास्ते में भगवान का मंदिर आ गया। दर्जी ने भगवान की भक्तिभाव से पूजा की और बोला - “हे भगवान! यदि परदेश में मेरा व्यापार अच्छा चलेगा और अच्छी कमाई होगी तो वापस आते समय तेरे चरणों में एक नारियल अवश्य चढ़ाऊँगा।”

बस, वह कलकत्ता जैसे शहर में जा पहुँचा। उसने अच्छा मुहूर्त देखकर कपड़े का व्यापार शुरू कर दिया। उस दर्जी की किस्मत अच्छी होने के कारण व्यापार काफी जोरों से चला। कुछ ही समय में अच्छी पूंजी कमाकर वह अपने देश के लिए रवाना हो गया। रास्ते में उन्हीं भगवान का मंदिर आया। अचानक उसको अपनी प्रतिज्ञा याद आ गई और वह समीपस्थ गाँव में नारियल खरीदने के लिए गया। दुकानदार ने कहा - “एक नारियल के दो आने लगेंगे।” उसने कहा - “डेढ़ आना ले लो।” सौदा नहीं पटने के कारण दूसरी - तीसरी दुकान पर गया। एक नारियल डेढ़ आने का बताया गया। उसने कहा - “एक आना दूँगा।” फिर आगे चला। कई दुकानदार दो पैसे के नारियल देने लगे, फिर भी उसने नहीं लिया क्योंकि अति लोभी होने के कारण वह एक ही पैसे में लेना चाहता था। व्यापारियों ने कहा - “जंगल निकट ही है। नारियल के काफी वृक्ष हैं, वहाँ मुफ्त में ही मिल जायेगा।”

वह दर्जी जंगल में गया और अच्छा सा वृक्ष देखकर नारियल तोड़ने के लिए

ऊपर चढ़ा। ज्यों ही हाथों से डाली को पकड़ा त्यों ही पैर फिसल गये और वह एक डाली में जा फंसा, जिसे पकड़कर वह लटक गया। पास ही में एक कुआँ था। वह विचार कर रहा था - हाय! दो पैसे के लोभ में फंसकर मैंने बहुत ही बड़ी गलती की। अब इस दुःख से छुटकारा कैसे होगा। इसीलिए नीतिकारों ने कहा भी है - “लालच बुरी बलाय”। जिसमें पड़कर प्राणी अपने प्राण तक गंवा बैठता है।

इतने में एक ऊँट वाला आया और उसने कहा - “यदि तू मुझे नीचे उतार देगा तो मैं तुझे १०० रुपये इनाम दूँगा।” रुपयों का नाम सुनते ही वह तैयार हो गया और उसने अपने ऊँट पर खड़े होकर जैसे ही उस दर्जी के पैर पकड़े ऊँट तो आगे बढ़ दिया। अब तो ऊँटवाला भी लटक गया और उसने कहा - “भाई! तुम डाल को मजबूती से पकड़े रहना अन्यथा हम दोनों ही मरेंगे।”

इतने में एक घोड़ी वाला वहाँ से गुजरा। दोनों ने मिलकर आवाज दी - “भाई! हम दोनों को बचा लो, हम तेरा उपकार नहीं भूलेंगे। यदि तुम हमें इस संकट से बचा दोगे तो हम तुम्हें १०००-१००० रुपये इनाम में देंगे।”

वह भी घोड़ी पर चढ़ा, और ऊँट वाले के पैर जैसे ही पकड़े, घोड़ी चमककर दूर चली गई और वह भी लटक गया। अब दोनों ने मिलकर दर्जी से कहा- “भाई! हाथ छोड़ मत देना, अब तो तेरे ही चरणों में जीवन है। हम दोनों तुमको एक-एक हजार मुहरें देंगे।” मोहरों की बात सुनते ही उस दर्जी ने सोचा अब तो महल बनाऊँगा। वह मुहरों की खुशी में इतना फूल गया कि अपने आप को ही भूल गया अचानक डाल से हाथ छूटे और तीनों ही कुँए में जा गिरे। भगवती आराधना ग्रंथ में पू. आचार्य शिवकोटि महाराज लोभ करने में क्या दोष होगा उसे बताते हुए कहते हैं।

लोभेणासाधत्तो पावइ दोसे बहं कुणदि पावं।

णीए अप्पाणं वा लोभेण णरो ण विगणेदि।।भ.आ.१३८३

लोभ से मनुष्य ‘यह वस्तु मेरी होगी।’ इस आशा से ग्रस्त होकर बहुत दोष करता है, बहुत पाप करता है। लोभ से अपने कुटुम्बियों की और अपनी भी चिंता नहीं करता। उन्हें भी कष्ट देता है और अपने शरीर को भी कष्ट देता है। कहा भी है-

"Avarises is the root of all evils".

अर्थात् लालच सभी बुराईयों की जड़ है। लालच से प्राणी का सर्वस्व नष्ट हो जाता है। इसलिए पू. आचार्य महाराज कहते हैं -

“अति लोभो न कर्त्तव्यः” ।

अति लोभ कभी भी नहीं करना चाहिए। जो मनुष्य लालच के पंजे में फँस जाते हैं उनको तीनों महाशयों की भाँति दुःख के महासागरों में गोते खाने पड़ते हैं।

लोभी मानव हर कदम, पाते दुःख महान्।

लोभ न करना चाहिए, कहते संत महान्।।

कहा भी है -

तेलोककेण वि चित्तस्स णिव्वुदी णत्थि लोभ घत्थस्स ।

संतुट्ठो हु अलोभो लभदि दरिदो वि णिव्वाणं ।।भ.आ.१३८६

जो लोभ से ग्रस्त है उसके चित्त को तीनों लोक प्राप्त करके भी सन्तोष नहीं होता। और जो शरीर की स्थिति में कारण किसी भी वस्तु को पाकर सन्तुष्ट रहता है, जिसे वस्तु में ममत्व भाव नहीं है वह दरिद्र होते हुए भी सुख प्राप्त करता है। अतः चित्त की शान्ति सन्तोष के अधीन है द्रव्य के अधीन नहीं है महान द्रव्य होते हुए भी जो असन्तुष्ट है उसके हृदय में महान दुःख रहता है। उस लोभ को जीतने का उपाय जानना आवश्यक है। तभी हम उसे छोड़ सकते हैं अतः पू. आचार्य शिवकोटि महाराज भगवती आराधना में कह रहे हैं-

लोभे कए वि अत्थो ण होइ पुरिसस्स अपडि भोगस्स ।

अकएवि हवदि लोभे अत्थो पडि भोगवंतस्स ।।भ.आ.१४३१

लोभ करने पर भी पुण्य हीन पुरुष के पास धन नहीं होता, और लोभ नहीं करने पर पुण्यशाली के पास धन होता है। अतः धन का लोभ धन लाभ में निमित्त नहीं है किन्तु पुण्य निमित्त है ऐसा विचार कर लोभ को त्यागना चाहिए। अर्थ की प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयत्न करता है किन्तु अर्थ अनेक बार प्राप्त हुआ और छोड़ा है उसमें आश्चर्य कैसा ? इस तरह लोभ को जीतने के लिए मन में चिन्तन करो।

सब्बे वि जए अत्था परिगहिदा ते अणंतखुत्तो मे ।

अत्थेसु रत्थ को मज्झ विभओ गहिदविजडेसु ।।भ.आ.१४३२

जगत् में जितने पदार्थ हैं वे सब मैंने अनन्तबार प्राप्त किये। उन ग्रहण किये और त्यागे हुए पदार्थों में आश्चर्य कैसा ? इस प्रकार विचार कर मन में संतोष को धारण करना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने भगवान महावीर के अपरिग्रह के सिद्धान्त को स्वीकार किया

और कहा कि आवश्यकता से अधिक परिग्रह रखना पाप है, गाँधी जी खादी की वह भी आधी धोती ही पहनते थे। वे कहते थे एक धोती की लंगोटी बनायी जाए तो दस लोगों के काम आयेगी, इसलिए पूरी क्यों पहनूँ। खाली गरीबी उन्मूलन के नारों से गरीबी दूर नहीं हो सकती, इस सिद्धान्त पर चलते तो आज भारत पर इतना ऋण नहीं होता। नेता लोग चुनाव के समय अरबो-खरबों रुपया बर्बाद करते हैं, शराब पीने पिलाने में इतना पैसा बर्बाद न करते और उसे गरीबों के उत्थान में लगाते तो कितनों की गरीबी दूर हो सकती थी।

अनावश्यक सामग्री न रखे और यदि आपके पास कोई सामान है तो उसे दूसरों को देने में उदारता रखिए। एक बार पू. आचार्य आदिसागर जी महाराज जब गृहस्थ अवस्था में थे तब उनके गाँव में अकाल पड़ गया, चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई, गरीब जनता भूख से व्याकुल हो उठी तब शिवगौड़ा पाटिल ने दया से आर्द्र हो अपने अनाज के भंडार के भंडार खोल दिये तथा अमीरों के ताले तोड़कर गरीबों को बाँट दिया, लोगों ने उनकी Report कर दी उन्हें बंदी बनाया गया, जज ने पूछा - क्या आपने ताले तोड़े - उत्तर मिला हाँ। अनाज निकाला - हाँ, परंतु अपने लिए नहीं अपितु भूखी प्यासी जनता के उपकार के लिए, प्रजा की सेवा के लिए निकाला। जज उनके सत्य की कसौटी पर कसे वचनों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले - धन्य है आप, आपका यह मुकद्मा खारिज किया जाता है। वे विजित हुए, रास्ते भर गले में माला पहनायी गयी। व “अन्नदाता” की उपाधि दी गई।

व्यर्थ का संग्रह करते रहने से कोई लाभ नहीं। धन की तीन ही गति होती है - (१) दान (२) भोग (३) नाश। धन देने से घटता नहीं अपितु बढ़ता है, कंजूस न स्वयं खाता है न खाने देता है। वह विजूके की तरह होता है। जानवर सोचते हैं यह मनुष्य है अतः डर कर फसल नहीं खाते और वह स्वयं खाता नहीं। इसी प्रकार की परिणति कंजूस व्यक्ति की होती है। कंजूस का धन उपयोग में नहीं आता, रखा रह जाता है। परलोक में चाबियाँ साथ नहीं जायेगी। समझदारी इसी में है कि जो भी दीन दुःखी दिखे देते जाइए।

एक बार अकबर व बीरबल में चर्चा छिड़ गयी अकबर ने बीरबल से पूछा - बीरबल! मनुष्यों के हाथ में बाल क्यों नहीं होते? बीरबल ने कहा - जहाँपनाह! कुछ मनुष्य दान देते हैं अतः उनके हाथों में बाल नहीं होते और कुछ के हाथों के बाल लेते-लेते घिस जाते हैं और कुछ विशेष मनुष्य तो ऐसे हैं जो न देते हैं और न लेते हैं मात्र हाथ ही मलते रहते हैं, दूसरों को दान देता देख जलते रहते हैं और हाथ मलते-मलते ही

उनके बाल झड़ जाते हैं। शास्त्रों में कहा है -

“लोभ पाप का बाप बखाना”

पाँच प्रकार के पाप होते हैं - हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। इनमें परिग्रह पाप लोभ कषाय से होता है। और जहाँ लोभ है वहाँ शेष पाप भी स्वयमेव हो जाते हैं इसलिए लोभ को पाप का बाप कहा गया है। ‘लोभ’ मन की अपवित्रता का प्रतीक है, लोभी व्यक्ति कभी भगवान की भक्ति भी नहीं कर सकता है। गुरुओं की सेवा भी नहीं करता। ऐसे व्यक्ति यही कहते हैं कि यदि हम दर्शन करने जायेंगे तो दुकान कौन चलायेगा। भगवान तो मंदिर में ही है कभी भी मिल जायेंगे परंतु ग्राहक चला गया तो बड़ा भारी नुकसान होगा।

इसका मतलब यह हुआ कि आपकी दृष्टि में ग्राहक भगवान से भी बढ़कर हो गया। आखिर परिणामों में इतनी गिरावट कैसे आयी? बंधुओं! लोभ जाग्रत हो गया। इस लोभ की लीला अपरंपार है। पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज लोभी की परिणति कहते हैं-

दहनस्तृण काष्ठ संचयैरपि, तृप्ये दुदधिर्नदीशतैः।

न तु काम सुखैः पुमान हो, वल वत्ता खलु कापि कर्मणाः।। इ.टी.

यद्यपि अग्नि, घास, लकड़ी आदि के ढेर से तृप्त हो जाए। समुद्र सैकड़ों नदियों से तृप्त हो जाए, परंतु लोभी पुरुष इच्छित सुखों से कभी तृप्त नहीं होता। अहो! कर्मों की कोई ऐसी ही सामर्थ्य या जबर्दस्ती है। आत्मानुशासन ग्रंथ में भी पू. आचार्य गुणभद्र स्वामी जी कहते हैं -

आशागर्तः प्रतिप्राणी, यस्मिन् विश्व मणुपमम्।

कस्य किं कियदायाति, वृक्षा वो विषयैषिता।।

एक-एक व्यक्तियों की आशाओं का गर्त इतना बड़ा है कि उसमें सम्पूर्ण विश्व की विभूति भर जाये तो भी वह अणु के बराबर दिखेगी। क्या कभी ऐसा संभव हो सकता है अर्थात् नहीं। इसलिए आकांक्षा करना व्यर्थ है।

लोभ सभी अनर्थों का अनर्थ है। अतः कहा है “**लोभ सर्वतः परित्यजेत्।**”

अर्थात् लोभ का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। क्योंकि जब लोभ जगता है तो तृष्णा निरंतर बढ़ती जाती है फिर चाहे व्यक्ति बूढ़ा भी क्यों न हो जाए परंतु तृष्णा उसके अंदर बनी ही रहती। पचता तो है नहीं, दाँतों से चबता, नहीं फिर भी सामने आ जाए तो बचता

भी नहीं है। यह क्यों हुआ ? क्योंकि शरीर तो वृद्ध हो गया पर तृष्णा अभी जवान है। कहा भी है-

“अचत नईया पचत नईया सामने आ जाए तो बचत नईया।”

इसी बात को गाथा के माध्यम से पू. आचार्य महाराज कहते हैं-

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा, दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।

चक्षु श्रोते च जीर्यत, वषौका तरुणायते।।पं.तं.५/१४।।

बुढ़ापा आने से बाल सफेद हो जाते हैं, दाँत भी हिलने लगते हैं, आँख, कान भी जीर्ण हो जाते हैं (आँखों से दिखना व कानों से सुनाई पड़ना बंद जो जाता है।) किंतु एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है।

जब लोभ कषाय जगती है। तो व्यक्ति किसी के प्राणों के हरने तक के निंद्य विचार बना लेता है। एक बार की बात है। दो भाई थे, आपस में अच्छा प्रेम था। परस्पर चिंतन चला। यहाँ किसी भी प्रकार का व्यापार नहीं है इसलिए दोनों परदेश चले गये। कपड़े का व्यापार किया। कुछ ही समय में लाख रुपये कमा लिये। घर की याद आते ही दोनों अपने गाँव की ओर रवाना हो गये। चलते-चलते मार्ग में बड़े भाई का मन बिगड़ गया। उसने सोचा, मेरे हिस्से में धन आधा ही आयेगा। छोटे भाई को मार दूँ तो सारा धन मेरे पास ही रह जायेगा।

इधर छोटे भाई के दिल में भी विकृति उत्पन्न हो गई - यदि मैं बड़े भाई का कत्ल कर दूँ तो लाख रुपयों का मालिक मैं ही बन जाऊँगा। क्या है, कौन देखता है ? मार दूँ बड़े भाई को। तैयारी कर ही रहा था कि इतने में उसके विचारों ने मोड़ लिया, सदबुद्धि का अभिसंचार हुआ। धन के लिए भाई की हत्या करूँ ? धिक्कार है मेरे जीवन को! यह परिग्रह पाप का मूल है। परिग्रह को रखने में लाभ नहीं है।

बंधुओं! लोभ कषाय में मंदता आते ही संतोष उत्पन्न हो गया। और जो संतोष करता है उससे अधिक सुखी संसार में कोई दूसरा नहीं है। कहा भी है "Containtment is happiness"

“संतोषं परमं सुखं”। जहाँ संतोष धन आ जाता है वहाँ व्यक्ति लौकिक धन की अपेक्षा नहीं रखता।

“जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान।”

बड़ा भाई सो रहा था। तभी छोटा भाई उठा और रुपयों से भरी थैली पानी में बहा दी।

रूपयों की खनखनाहट की आवाज सुनते ही बड़ा भाई चौंककर जाग गया। और बोला - अरे भैया! अभी यह शब्द किसका हुआ ?

छोटे भाई ने विनम्र शब्दों में कहा - भाई साहब! क्या कहूँ? बात कहते मुझे शर्म आती है। यह धन अनर्थ का मूल है। इस धन के लिए मैं आपकी हत्या करने के लिए तैयार हो गया, किंतु सदबुद्धि जाग्रत होते ही मैंने धन की झोली नदी में बहा दी। उसी का शब्द हुआ।

बड़े भाई ने कहा तुमने झोली बहाकर बहुत अच्छा किया। मेरे मन में भी ऐसी निकृष्ट विचार-धारा उत्पन्न हुई थी कि मैं छोटे भाई को मार दूँ। भैया! अब कभी भी अपने को धन का संग्रह नहीं करना है। दोनों भाई अपने घर पहुँचे और प्रेम से रहने लगे।

गिरकर लालच गर्त में, हुआ बंधु विकराल।

ज्येष्ठ बंधु को मार दूँ, उमड़े हृदय विचार।।

अतः बंधुओं! हमें चाहिए कि हम लोभ कषाय का त्याग कर संतोष को धारण करें और उत्तम 'शौच-धर्म' को अपनाकर जीवन को सफल करें क्योंकि शौच-धर्म की महिमा अपरंपार है। कवि रघुई कहते हैं।

धम्म सउच्चु होइ मण सुद्धिँ, धम्म सउच्चु वयण धण गिद्धिँ।

धम्म सउच्चु कसाय अहावें, धम्म सउच्चु ण लिप्पइ पावें।।३।।स

धम्म सउच्चु लोहु वज्जंतउ, धम्म सउच्चु सुतव पहि जंतउ।

धम्म सउच्चु बंभ वय धारणि, धम्म सउच्चु मयट्ठ -णिवारणि।।४।।

धम्म सउच्चु जिणायम भणणे, धम्म सउच्चु सगुण अणुमणणे।

धम्म सउच्चु सल्लकयचाए, धम्म सउच्चु जि णिम्मलभाए।।५।।

उत्तम शौच धर्म मन की शुद्धि, धन की गृह्यता के त्याग से तथा कषायों के अभाव से होता है। शौच धर्म का धारी पाप से लिप्त नहीं होता। यह लोभ का वर्जन करता है तथा सुतप का माध्यम है। तथा उत्तम बह्मचर्य व्रत को धारण करने से होता है तथा आठों मद शौच धर्म से नष्ट हो जाते हैं। यह जिनागम का कथन करने से होता है। तथा आत्म गुणों के चिंतन-मनन से होता है। शल्यों के नष्ट करने तथा निर्मल भाव बनाने से उत्तम शौच धर्म होता है।

पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज भी अपने सुभाषित रत्नावली ग्रंथ में शौच धर्म की महिमा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं-

संतोषं कुरु सर्व सौख्यजनकं दुःखार्णवोत्तारकं,
सद्धर्ममलरत्नसागरपरं पापान्तकं निःस्पृहम्।
मोक्षस्वर्गवशीकरं गुणनिधि तीर्थेश्वरैः सेवितं,
चिंता दुःखभयादिदूरमसमं लोभं त्य त्वं सदा ॥११३॥

जो समस्त सुखों का जनक है, दुःख रूपी सागर से तारने वाला है। सद्धर्मरूपी निर्मल रत्नों का उत्कृष्ट सागर है, पापों का अंत करने वाला है, निःस्पृह है, मोक्ष तथा स्वर्ग को वश में करने वाला है, गुणों का भण्डार है, तीर्थकरों के द्वारा सेवित है। चिंता, दुःख और भय आदि से दूर है ऐसे संतोष को धारण कर तुम हमेशा लोभ को छोड़ो।

‘उत्तम शौच धर्म’ शुभ मार्ग का प्रकाशन करता है तथा शिवपथ को प्रदान करता है। अतः उसी को धारण करो।

“मधुर वचन बोली पा ली सत्य धर्म महान”

सतां साधूनां हित भाषणं सत्यम् । भ.आ./वि./९६/१५४/१६

अर्थ - मुनि और उनके भक्त (श्रावक) इनके साथ आत्म हितकर भाषण बोलना यह सत्य धर्म है ।

सत्सु प्रशस्तेषु जनेषु साधुवचनं सत्य मित्युच्यते ।स.सि.९/६/४१२/७

अर्थ - अच्छे पुरुषों के साथ साधु वचन बोलना सत्य है ।

सत्यं हितं मितं ब्रूयान्मर्म हिंसादि वर्जितम् ।

धर्मोपदेशकं सारं श्रोतृ श्रवण सौख्यदम् ।।स.श्लो.स.

अर्थ - सदा सत्य, हित, मित मर्मघात आदि से रहित, धर्मोपदेशक सार तथा श्रोताओं के कान के लिए सुखदायक वचन बोलना चाहिए ।

माया व होइ विस्सस्सणिज्जो पुज्जो गुरुत्व लोगस्स ।

पुरिसो हु सच्चवाई होदि हु सणियल्लओ व पिओ ।।भ.आ.८३४

अर्थ - सत्यवादी माता के समान विश्वास योग्य, गुरु के समान पूज्य और बन्धु के समान लोकप्रिय होता है ।

सच्चं अवगद दोसं वुत्तूण जणस्स मज्झयारम्मि

पीदि पावदि परमं जसं च जग विस्सुदं लहइ ।।भ.आ.८३५

अर्थ - जन समुदाय के बीच में दोष रहित सत्यवचन बोलने से मनुष्य जनता का प्रेम तथा जगत् में प्रसिद्ध उत्कृष्ट यश पाता है ।

असत्य का लक्षण:-

स्वपर संतापकरणं यद्वचोऽङ्गिनां ।

यथा दृशार्थं मप्यत्र तद सत्यं विभाव्यते ।।श्लो.वा./मू.७/१४

अर्थ - जो वचन अपने को तथा दूसरे को कष्ट पहुँचाने वाला हो वह वचन “जैसा देखा वैसा बताने वाला” होने पर भी असत्य है ।

असतोऽर्थस्याभिधानमसदभिधानमनृतम् ।स.स.७/१४/३५२/२

अर्थ - जो पदार्थ नहीं है इसका कथन करना, अनृत असत्य कहलाता है ।

असत्य से दोष (हानि):-

होदु सिंहंडी व जडी मुंडी वा णगगओ व चीरधरो ।

जदि भणदि अलियवयणं विलंबणा तस्स सा सव्वा ।।भ.आ.८३८

अर्थ - भले ही मनुष्य शिखाधरी हो, जटाधारी हो, सिर मुड़ाए हो, नंगा रहता हो या चीवन धारण किये हो, यदि वह झूठ बोलता है तो यह सब उसकी विडम्बना मात्र है।

मादाए वि वेसो पुरिसो अलिण होइ एक्केण ।

किं पुण अवसेसाणं ण होइ अलिण सत्तुव्व ।।भ.आ.८४०

अर्थ - एक असत्य वचन से मनुष्य, माता का भी विश्वास भाजन नहीं रहता। तब असत्य बोलने से शेषजनों का वह शत्रु के समान क्यों नहीं प्रतीत होगा।

अलियं स किं पि भणियं घादं कुणदि बहुगाण सच्चाणं ।

अदिसंकिदो य सयमवि होदि अलिय भासणो पुरिसो ।।भ.आ.८४९

अर्थ - एक बार भी बोला गया झूठ बहुत बार बोले गये सत्य वचनों का घात कर देता है। लोग उसके सत्य कथन को भी झूठ मानने लगते हैं। झूठ बोलने वाला मनुष्य स्वयं भी अतिभीत रहता है।

दुर्जन मनुष्यों के मुख रूपी बिल में जिह्वा नाम की सर्पिणी निरंतर रहती है। वह जगत को खाना चाहती है इसलिए तुम उसे सत्य रूपी मंत्र के द्वारा कीलित कर दासे। जिससे यह जिह्वा असत्य, निंदित, गर्हित, सावद्य युक्त, पैशून्य वचन को न कह सके।

चारों कषायों को जीत लेने के पश्चात् ही सत्य का प्रादुर्भाव होता है अतः आज हम 'सत्य धर्म' की गहराईयों में उतरने का प्रयत्न करेंगे। सत्य के विषय में पू. आचार्य कार्तिकेय स्वामी ने अपने कार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रंथ में कहा है-

जिण वयणमेव भासदि तं पालेदु असक्क माणो वि ।

ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई ।।का.अनु.३९८

अर्थ - जैन शास्त्रों में हुए आचार को पालने में असमर्थ होते हुए भी जो जिन वचन का ही कथन करता है, उससे विपरीत कथन नहीं करता, तथा जो व्यवहार में भी झूठ नहीं बोलता, वह सत्यवादी है। रङ्घुई कवि उत्तम सत्यधर्म के विषय में कहते हैं-

असत्य दूरगं सत्यं वाचा सर्व हितावहम्।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये।।१।।

अर्थ - असत्य से जो रहित है और सबका हित करने वाले हैं ऐसे सत्य वचन की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ भक्ति पूर्वक मैं उसकी पूजा करता हूँ।

वस्तु का स्वभाव, बोलने की पद्धति, अतिशय विशेष, वस्तु का वास्तविक स्वभाव तथा धर्म के लिए भी सत्य कहा गया है। “सत्य-धर्म” असीम होता है, सारा विश्व ही सत्य से भरा है, विश्व में एक परमाणु भी ऐसा नहीं जिसमें सत्य न हो, सत्य को सर्वत्र प्राप्त किया जा सकता है परंतु सत्य को वचनों से नहीं कहा जा सकता क्योंकि शब्द सीमित है, सत्य असीमित है। आपसे यदि पूछा जाए गुड़ का स्वाद कैसा है तो आप कहेंगे- मीठा। शक्कर का कैसा है तो वह भी- मीठा। लेकिन दोनों के मीठेपन में अंतर है शक्कर अधिक मीठी है, मिश्री उससे भी अधिक मीठी है और खांड उससे भी मीठी है। इन पदार्थों के उत्तरोत्तर मीठेपन को तो बता सकते हैं परंतु मीठापन को आप प्रकट नहीं कर सकते। कोई समझदार, ज्ञानी होगा तो यही कहेगा आप स्वयं चखकर देख लीजिए तो पता चलेगा मीठा कैसा होता है।

कोई गर्मी से आया है और शीतल छाया मिल जाए तो उसे आनंद आता है अब कोई पूछे कैसा आनंद आया तो उस आनंद को कहा नहीं जा सकता। इसी प्रकार सत्य को भी शब्दों से नहीं कहा जा सकता, सत्य को परवस्तु के माध्यम से समझाया जा सकता है। बेटे ने पापा से पूछा पापा- शेर कैसा होता है। तो पापा बोले- बेटा! आपने बिल्ली देखी है हाँ, पापा देखी है बस, बेटा वैसा ही शेर होता है। यहाँ उपमा दी है।

कोई पूछे आकाश कितना है तो उसे कोई नाप नहीं सकता वह तो असीम है उसी प्रकार सत्य भी असीम होता है शब्दों का विषय नहीं है अनुभव का विषय है, वस्तु का असली अंश है। एक बार धवला जी की वाचना के समय एक प्रकरण निकला कि भगवान कितना जानते हैं तो वे अनंत जानते हैं परंतु अनंत पदार्थ उनकी दिव्य-देशना में नहीं खिरते। अब जो दिव्य-देशना खिरती है उसका कुछ ही अंश गणधर झेल पाते हैं और जितना वे झेलते हैं उसका असंख्यातवाँ भाग ही सूत्रित कर पाते हैं। जितना हम सुनते हैं, उतना समझ नहीं पाते और जितना समझ पाते हैं उतना लिख नहीं पाते। कहने का तात्पर्य है असीमता हमारे अंदर आ सकती है परंतु वचनों से कहना असंभव है। उसी प्रकार असीम सत्य को जाना जा सकता है परंतु वचनों से कहा नहीं जा सकता।

सत्य को पाने के लिए पहली सीढ़ी है सत्याणुव्रत । रत्नकरण्डक श्रावकाचार में पू. आचार्य समंतभद्र महाराज ने सत्याणुव्रत के विषय में कहा है-

स्थूल मलीकं न वदति, न परान् वादयति सत्य मपि विपदे ।

यत्तद् वदन्ति सन्तः, स्थूल मृषा वाद वैरमणम् ॥५५॥

जो व्यक्ति न तो सवयं झूठ बोलता है न ही दूसरों से बुलवाता है तथा ऐसा सत्य भी नहीं बोलता जिससे किसी के प्राण संकट में पड़ जाये या आजीविका छूट जाये ।

सत्याणुव्रत के विषय में सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में पू. आचार्य पूज्यवाद महाराज कह रहे हैं-

स्नेह मोहादिवशाद् गृह विनाशे ग्राम विनाशे वा ।

कारण मित्यभिमताद् सत्य वचनान्निवृत्तो ग्रहीति द्वितीय मणुव्रतम् ॥

स.सि/७/२०३५/८/८

गृहस्थ स्नेह और मोहादि के वश से गृह विनाश और ग्राम विनाश के कारण असत्य वचन से निवृत्त है इसलिये उसके दूसरा अणुव्रत है ।

हम देखे तो सर्वत्र असत्य की ही मात्रा चल रही है और निगाहें सत्य की ओर है, आपके गाड़ी Reverse चल रही है, गाड़ी में गति तो है परंतु विपरीत दिशा में, आपकी गाड़ी पीछे की ओर जा रही है। अपनी गाड़ी का गेयर बदलिए, गाड़ी को Forward कीजिए तभी आगे जायेगी। झूठ बोलकर और सत्य को पाना चाहो तो यह तीन काल में संभव नहीं है। यदि आप सत्य का अच्छी तरह पालन करना चाहते हैं तो सत्यव्रत की भावनार्यें व अतिचार जानना परमावश्यक है ।

पू. आचार्य उमास्वामी महाराज अपने तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में कहते हैं।

क्रोध लोभ भीरुत्व हास्य प्रत्याख्यानान्यनुवीचि भाषणं च पचं । त.सू. ५

क्रोध, भय, लोभ और हास्य का त्याग, अनुवीचिभाषण सत्य व्रत की ५ भावनार्यें हैं ।

पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज अपने सुभाषित रत्नावली में कहते हैं-

जिह्वाख्या सर्पिणी नित्यं स्थिता सद्वदने बिले ।

लोकं जिह्वत्सति त्वं हि सत्यमन्त्रेण कीलय ॥१२२॥

बात-बात में झूठ बोलने वाले दुर्जन मनुष्यों के मुख रूपी बिल में, जिह्वा नाम की सर्पिणी हमेशा निवास करती है और वह अपने असत्य वचनों के द्वारा संसार में स्थित प्राणियों को खाना चाहती है । इसलिए उस जिह्वा रूपी सर्पिणी को तुम सत्य रूपी मंत्र से कीलित

कर दो। जिससे यह जिह्वा असत्य, गर्हित, सावद्ययुक्त पैशून्य वचन को न कह सके। असत्य के विषय में कहा भी है-

परिवादो रहोभ्याख्यान पैशून्य कूटलेख करणं च।

न्यासापहारिताऽपि च व्यतिक्रमाः पचं सत्यस्य।।रत्न.श्रा.५५

दूसरों की बुराई करना, दूसरों की गुप्त बात को प्रकट करना, चुगली करना, झूठे लेख लिखना, किसी की धरोहर को हरना ये सत्याणुव्रत के अतिचार हैं।

अप्पच्चओ अकित्ती झंझारदिकलहवेर भय सोगा।

वध बंध भेय धणणासा वि य मोसम्मि सण्णिहिदा।।भ.आ.८४२

असत्य भाषण में अविश्वास, अपयश, संक्लेख, अरति, कलह, वैर, भय, शोक, वध, बन्ध, कुटुम्ब में फूट, धन का नाश इत्यादि दोष पाये जाते हैं।

अतः झूठ का त्याग कर पहले सत्याणुव्रती बन जाइए। बोल सको तो सत्य वचन ही बोलो अन्यथा मौन रहो। सत्य कैसा बोले तो सदैव हित, मित और प्रिय वचन ही बोलना चाहिए। कहा भी है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

नानृतं च प्रियं ब्रूयात् एषः धर्म सनातनः।। नीति श्लोक

सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु अप्रिय सत्य और प्रिय झूठ कभी मत बोलो यही सनातन धर्म है।

मर्मच्छेदि मनःशल्यं च्युतस्थैर्यं विरोधकम्।

निर्दये च वचस्त्याज्यं प्राणैः कण्ठ गतेरपि।। स.श्लो.स.

मर्म भेदी, मन में शल्य उपजाने वाला, धैर्य छुड़ाने वाला, सविरोध करने वाला और दयारहित वचन गन्ठ गत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिए।

स्वपर हितमेव मुनिभिर्मित ममृतसमं सदैव सत्यं च।

वक्तव्यं वचनमथ प्रविधेयं धीधनैर्मौनम्।। प.वि./१/६९१

मुनियों को सदैव ही स्वपर हितकारक, परिमित तथा अमृत के सदृश ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए। यदि कदाचित् सत्य वचन बोलने में बाधा प्रतीत होती है तो मौन रहना चाहिए।

शब्द सम्हारे बोलिए, शब्द के हाथ न पाँव।

एक शब्द अमृत करै, एक हृदय में घाव।।

अतः जब भी बोलो, तौल कर बोला। लेकिन प्रायः व्यक्ति 'उठाई जीभ और तरुआ से पटक दी'। परंतु ऐसा सत्य, सत्य नहीं है। तुमने सत्य बोला और दूसरे के प्राण चले गये या आजीविका समाप्त हो गयी, जिसमें दूसरे के प्राण दुःखे वह सत्य - सत्य नहीं है। सत्य-अहिंसा के साथ चलता है, जो अहिंसा के साथ चलता है वह सत्य है। हिंसक सत्य वचन गोली से अधिक खतरनाक होते हैं। गोली का निशाना चूक सकता है परंतु बोली का निशाना अचूक है। कभी भी बोलो तो ज्ञान और विवेक से तौल कर बोलो। जैसे - गोली चलाने वाला योद्धा देखता है, शत्रु की पहचान करता है फिर संकेत देता है।

घटना उस समय की है जब मैं कटनी में एक विद्यार्थी के रूप में था तो कभी-कभी हम बच्चे मनोरंजन में लग जाते थे तो Hostel पहुँचने में late हो जाते थे एक दिन रात्रि हो गयी, एक पीछे का रास्ता था जो कचहरी में से होकर जाता था, Superintendent का डर था अतः पीछे के रास्ते से गये। कचहरी से निकले वही Police-station थी। जैसे ही हम दौड़े हमें सिपाही ने पकड़ लिया। हमने सारी घटना सच-सच बता दी। वह बोला अगर तुम रुकते नहीं तो मैं तुम्हें गोली मार देता। अतः अब कभी भी यहाँ से निकलो तो दौड़ कर नहीं निकलना। क्योंकि हम तो duty पर हैं अतः Alert रहना पड़ता है।

उसी प्रकार संत पुरुष वचनों का प्रयोग सोच-समझ कर करते हैं। कहा भी है-

कौआ काको देत है, कोयल काको लेत है।

मीठी वाणी बोल कर जग आपा कर लेत।।

अर्थात् जो व्यक्ति कोयल की तरह मीठी वाणी बोलता है वह सारे जग का अपना बना लेता है। मधुर वचन वशीकरण मंत्र की तरह होते हैं जग में सबको अपना बना लेते हैं। कहा भी है-

मधुर वचन से शत्रु भी, बन जाता है मित्र।

वश में करने जगत को, है यह मंत्र पवित्र।।

एक बार की घटना है एक दिन बादशाह अकबर ने समस्त सभासदों से प्रश्न किया- "संसार में सबसे मीठा क्या है?" सभी विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। किसी ने सबसे मीठी बरफी, किसी ने मालपुए आदि-आदि बताए। अंत में जब बीरबल की बारी आई तब उसने कहा- जहांपनाह! न तो कोई पकवान मीठे हैं और न ही कोई खीर, मालपुए। संसार में सबसे मीठा है- "वचन"।

बादशाह ने कहा- “बीरबल! तुम्हारी बुद्धि तीन लोक से न्यारी है। पकवानों से तो पेट भर सकता है, क्षुधा भी शांत हो सकती है। जीभ को भी स्वाद मिलता है, किंतु वचन से क्या भूख शांत होती है? वचन का क्या मीठा?” बीरबल ने कहा- “अभी तो आप मेरा मखौल उड़ा रहे हैं, किंतु समय आने पर मैं सिद्ध करके बताऊँगा कि वचन मीठा है।” सभा विसर्जित हुई। आगन्तुक अपने-अपने घर चले गये। कुछ ही दिनों के बाद दीपमालिका का त्यौहार आया। बीरबल ने बादशाह से कहा- आज हमारे हिंदुओं का बहुत बड़ा पर्व है, अतः आपकी बेगम (महारानी) को मेरे घर भोजन के लिए भेजिए। बादशाह, बीरबल की बात को कैसे टाल सकता था। बेगम उसके घर गई। बीरबल ने उसका अभूतपूर्व स्वागत किया। सुंदर-सुंदर गद्दियाँ और पाटे लगाये। तरह-तरह की सब्जियों और मिठाइयों की खुशबू से सारा घर सुगंधित हो रहा था। भोजन आरंभ हुआ। भोजन करते-करते बेगम के मन में विचार आया कि पकवान तो मैंने राजमहल में बहुत खाए लेकिन आज जैसे मधुर व मनोज्ञ मिष्ठान्न कभी नहीं खाए। बादशाह को यह सब बात सुनाकर बीरबल को अवश्य ही कुछ न कुछ पट्टा, परगना, बखशीश करवाऊँगी। दिल में बहुत खुशी थी। बीरबल के प्रति अच्छे विचार थे। भोजन समाप्त हुआ। पान सुपारी इलायची आदि की भी मनुहारें हुई।

ज्यों ही बेगम वहाँ से उठी, दो चार कदम आगे रखे त्यों ही बीरबल ने जोर से अपने नौकर से कहा- “अभी वहाँ ‘तुरकणी’ ने भोजन किया, उस जगह को पानी से साफ कर देना।” यह ‘तुरकणी’ शब्द सुनते ही बेगम का खाया पिया जहर हो गया। हृदय में क्रोधाग्नि भड़क उठी। आंखों से खून बरसने लगा। चुपचाप राजमहल में आ गई और कोपभवन में जाकर सो गई। बादशाह महारानी के पास पहुँचा तो उसका विकराल रूप देखकर बोला- “क्या बीरबल ने तुम्हारा स्वागत ठीक नहीं किया? ऐसे कपड़ों को बिखराकर क्यों कुपित हुई हो। बेगम बोली- “धिक्कार है उसके स्वागत को। जिसे बोलने की भी लियाकत नहीं है, उसने मुझे तुरकणी कहकर पुकारा बस, या तो मैं जीवित रहूँगी या वह बीरबल जीवित रहेगा।

बादशाह भी क्रुद्ध हो नीचे आया और बीरबल को बुलाकर कहा- “अरे! तुमने मेरी बेगम को नाराज कैसे कर दिया?” बीरबल- “मैंने तो अनेकों मधुर-मधुर पकवान खिलाए, तन-मन और धन से उनका स्वागत किया।” बादशाह- “धिक्कार है तुम्हारे स्वागत को। क्या तुमने उन्हें ‘तुरकणी’ शब्द से पुकारा? बीरबल- “हाँ, किंतु भोजन तो मीठा था। वचन ऐसा कह दिया तो क्या हुआ?” वचन से कोई पेट थोड़ी न भरता है?” बादशाह- “तुम्हारे कड़वे शब्दों से उनका खाया-पिया सब जहर हो गया। आखिर

तुमने ऐसा वचन क्यों कहा ?“ बीरबल- “हुजूर! आपके प्रश्न का उत्तर देने के लिए मुझे ऐसा करना पड़ा, मुझे क्षमा करें। आपने कहा था वचन क्यों मीठा होता है ? अब आप ही बताइए वचन सबसे मीठा है या नहीं ?“

यह सुनते ही बादशाह की आँखें खुल गईं। गुस्सा शांत हो गया। शीघ्र अपनी गलती को स्वीकार करते हुए बीरबल की पुनः पुनः प्रशंसा करने लगा। उसे आखिरकार मानना ही पड़ा कि वचन सबसे मीठा होता है।

जीभ में ही जहर है और जीभ में ही अमृत है। अमृतमय मधुर वचन सबको मनोज्ञ लगते हैं। मधुर वचन से सारा संसारवश में होता है और मधुरभाषी का सर्वत्र सम्मान होता है अतः किसी को भी कटु शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

बोला मंत्री बीरबल सबसे मिष्ट जवान।

बादशाह को हो गया, आखिर इसका ज्ञान।।

एक जिह्वा का ऐसा प्रभाव है जिसके प्रभाव से शत्रु भी मित्र व मित्र भी शत्रु बन जाता है। जो व्यक्ति ज्ञान का आश्रय न लेकर यद्वा-तद्वा बोलते हैं वे अपने जीवन में विपत्ति के द्वार को खोलते हैं। परंतु जो ज्ञान का आश्रय लेते हैं वे असभ्य, कटुक वचन नहीं बोलते और यदि कदाचित् कोई अन्य व्यक्ति उनसे कटुक वचन बोलता है तो वे समता रखते हैं। संत को यदि कोई पागल कह देता है तो वे कहते हैं आप ने सही कहा जो पापों को गलाता है वह पागल ही तो है। अर्थ का सम्यक् प्रयोग कीजिए सकारात्मक चिंतन सुई- धागे का काम करता है तथा नकारात्मक चिंतन कैंची का काम करता है, कर्मों पर विजय समता से ही होगी।

यदि हम भी सामने वाले की तरह हो जाये तो पहले वचन युद्ध फिर हाथा पाई फिर मुट्ठा-मुट्ठी फिर लट्टा-लट्टी होगी। एक बार की घटना है- एक धोबी की शिला पर एक संत बैठ गये। धोबी ने कहा- जल्दी उठो, यह मेरी शिला है मुझे वस्त्र धोना है। संत नहीं उठे तो दोनों का झगड़ा प्रारंभ हो गया और इसी बीच धोबी की लंगोटी उतर गई अब तो दोनों एक समान दिख रहे थे तभी एक देव संत की सहायतार्थ वहाँ आया परंतु दोनों को समान अवस्था में देख अचम्भे में पड़ गया कि सहायता किसकी करुं। जब वे साधु कुट-पिट गये तो हारकर एक किनारे बैठ गये। देव उनके पास पहुँचा और बोला आज्ञा दीजिए। तुम अब आये हो इतनी देर से कहाँ थे, साधु जी - था तो यहीं परंतु समझ नहीं पाया कि साधु कौन व धोबी कौन है। क्योंकि जो महाराज होते हैं वे नाराज नहीं होते, और जो नाराज होते हैं वे महाराज नहीं होते संत तो तत्वज्ञानी होते हैं। एक

दिन किसी ने पागल कहा तो वे तत्व चिंतन में डूब गये। ठीक ही कहा जो पापों को गलाता है वह पागल ही तो होता है। दूसरे दिन किसी ने कुत्ता कहा- तो वे चिंतन में डूब गये। सत्य ही है- जो कुत्सित, कुमार्ग से हटकर, अच्छे मार्ग पर आ गये हैं वे कुत्ता ही तो है। तीसरे दिन किसी ने लुच्चा कहा। तो संत पुनः सोचने लगे- जो केशलौच करते हैं वे लुच्चे ही तो हैं चौथे दिन किसी ने नंगा कहा तब चिंतन में डूबे दुनिया कितने सटीक सुंदर विशेषण देती है जो नग्न वेशधारी है वह नंगा ही तो है। फिर भी लोगों से न रहा गया तो वे बोले पाखंडी, संत ने पुनः विचार किया- जो पापों का खंडन करे वह पाखंडी है तत्व चिंतक के पास एक ऐसी विद्या उत्पन्न हो जाती है कि वह सब कुछ सहन कर लेता है। साधु के स्वभाव के विषय में कहा है-

साधु ऐसा चाहिए, जैसे सूप स्वभाव ।

सार-सार को गह रहे, थोथा रहे उड़ाय ।।

साधु सूप के समान होते हैं जो सार-सार को ग्रहण कर लेते हैं और थोथे-थोथे को उड़ा देते हैं। पू. आचार्य श्री जिनसेनाचार्य महाराज ने महापुराण में कहा- गोंच मत बनिए हंस बनिए। गोंच गाय के स्तनों में लगकर भी दूध नहीं पीती, खून ही पीती है। दूसरी ओर हंस जो होता है वह क्षीर से नीर को प्रथक कर देता है जब ऐसे चिंतन हमारे अंदर आते हैं तो व्यक्ति शांति का अनुभव करता है यही तो मोक्षमार्ग है।

जब व्यक्ति के अंदर ऐसे चिंतन उत्पन्न होते हैं तभी सत्य धर्म का समावेश हमारे अंदर हो सकता है। संतों का चिंतन अत्यंत निर्मल होता है यही कारण है कि वे सत्य महाव्रत धारी होते हैं। जहाँ नव कोटि से असत्य का त्याग हो जाता है वह सत्य महाव्रत है। वे किसी भी परिस्थिति में असत्य नहीं बोलते। वचन गुप्ति का पालन करते हैं। क्योंकि अधिक बोलने वाला सत्य धर्म को नहीं पा सकता। सत्य महाव्रत के विषय में मूलाचार ग्रंथ में कहा गया है-

रागादीहि असच्चं चत्ता परताव सच्चवयणुत्तिं ।

सुत्तत्थाणं विकहणे अयधावयणुज्झणं सच्चं । मूला. ६

रागादि के द्वारा असत्य बोलने का त्याग करना और पाप को ताप उत्पन्न करने वाले सत्य वचनों के भी कथन का त्याग करना तथा सूत्र एवं अर्थ के कहने में अयथार्थ वचनों का त्याग करना सत्य महाव्रत है। सत्य धर्म के विषय में कविवर रङ्घुई कहते हैं।

दय धम्महु कारणु दोस -णिवारणु इह भवि पर भवि सुक्खयरु ।

सच्चु जि वयणुल्लउ भुवणि अतुल्लउ बोलिज्जइ वीसासधरु ।।

सत्यधर्म, दयाधर्म का कारण है, दोषों का निवारण करने वाला है तथा इह लोक व परलोक में सुख देने वाला है। विश्व में सत्य वचन तुलना रहित है अर्थात् इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। इसे विश्वास के साथ बोलना चाहिए। 'सत्य' दया धर्म का कारण है। दयालु वृत्ति ही सत्य बोल सकता है कठोर चित्त नहीं। 'सत्य' में दया होती है। सत्य के प्रभाव से सीता के चारों ओर की अग्नि जल में परिवर्तित हो गई, सुदर्शन की सूली सिंहासन बन गई, भगवान पारसनाथ का उपसर्ग मोक्ष का हेतु बना, मनोरमा के ऊपर डाला सांप भी हार में बदल गया।

सच्चु जि सव्वहं धम्महं पहाणु, सच्चु जि महियलि गरुउ विहाणु।

सच्चु जि संसार समुद्द सेउ सच्चु जि सव्वहं मण सुक्ख हेउ ॥३॥

सत्य सब धर्मों में प्रधान है, सत्य महीतल पर सबसे बड़ा विधान है, नियम से संसारा समुद्र से तारने के लिए पुल के समान है और यह सत्य सब जीवों के मन में सुख उत्पन्न करने का हेतु है। आगे कहते हैं-

सच्चेण जि सोहइ मणुव जम्मु, सच्चेण पवित्तउ पुण्ण कम्मु।

सच्चेण सयल गुण-गण महंति, सच्चेण तियस सेवा वहंति ॥४॥

मनुष्य जन्म की शोभा सत्य से, सत्य से ही पुण्यकर्म प्रवृत्त होता है, सत्य से ही प्राणी महान गुणों का धारी होता है, सत्य के धारी की देवता सेवा व पूजा करते हैं।

सच्चेण अणुव्वय-महव्वयाइं, सच्चेण विणासइ आवयाइं।

हिय-मिय भासिज्जइ णिच्च भास, ण वि भासिज्जइ पर दुह पयास ॥५॥

सत्य से ही अणुव्रत व महाव्रत प्राप्त होते हैं। सत्य धर्म है तो अपवाद भी विनष्ट हो जाते हैं सीता जी, सेठ सुदर्शन, वारिषेण, नीली आदि का अपवाद सत्य के कारण शीघ्र नष्ट हो गया। अपवाद के बादल सत्य रूपी सूर्य के आने पर शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

पर बाहा यरु भासहु म भव्वु, सच्चु जि वं छंडहु विगय- गव्वु।

सच्चु जि परमप्पउ अत्थि इक्कु, सो भावहु भव तम दलण अक्कु ॥६॥

हे भव्य! दूसरों को बाधा करने वाला वचन मत बोलो हमेशा हित-मित और प्रिय बोलो, दूसरों को दुःख देने वाले वचन मत बोलो। सत्य बोलो परंतु अभिमान से रहित होकर बोलो, हित-मित व गरिमा पूर्ण ढंग से बोलो। सत्य ही एक मात्र परमात्मा है। वह भवरूप अंधकार का दलन करने के लिए सूर्य के समान है। उसकी निरंतर भावना भानी चाहिए।

सत्य की महिमा बताते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज ने अपने भगवती आराधना ग्रंथ में भी कहा है-

जलचंदणससि मुत्ताचंदमणी तह णरस्स णिव्वाणं ।

ण करंति कुणइ जह अत्थज्जुयं हिदमधुरमिदवयणं ॥ भ.आ.८२९

अर्थ से भरे हितकारी परिमित मधुर वचन इस जीव को जैसा सुख देते हैं वैसा सुख जल, चंदन, चन्द्रमा, मोती और चन्द्रकांतमणि भी नहीं देते।

सच्चं वदंति रिसओ रिसीहि विहिदाउ सव्व विज्जाओ ।

मिच्छस्स वि सिज्झंति य विज्जाओ सच्चवादिस्स ॥ भ.आ.८३१

ऋषि गण सत्य बोलते हैं। ऋषियों ने ही सब विद्याओं का विधान किया है सत्यवादी यदि म्लेच्छ भी हो तो उसे विद्या सिद्ध होती है।

ण डहदि अग्गी सच्चेण णरं जलं च तं ण बुड्ढेइ ।

सच्चबलियं खु पुरिसं ण वहदि तिक्खा गिरिणादी वि ॥ भ.आ.८३२

सत्यवादी मनुष्य को आग नहीं जलाती, पानी उसे नहीं डुबाती, जिसके पास सत्य का बल है उसे तीव्र वेग वाली नदी भी नहीं बहाती।

सच्चेण देवदावो णवंति पुरिसस्स ठंति य वसम्मि ।

सच्चेण य गहगहिदं मोएइ करंति रक्खं च ॥ भ.आ.८३३

सत्य के बल से देवता नमस्कार करते हैं, सत्य से देवता पुरुष के वश में हो जाते हैं, सत्य से पिशाच पकड़ा हुआ मनुष्य भी छूट जाता है, और उसकी रक्षा देव करते हैं।

रुंधिज्जइ मुणिणा वयण गुत्ति, जं खणि फिट्ठइ संसार अत्ति ॥ ७ ॥

मुनि वचन गुप्ति का निरोध करते हैं, वह क्षणभर में संसार की पीड़ा का अंत कर देती है।

सच्चु जि धम्म- फलेण केवलणाणु लहेइ जणु ।

तं पालहु भो भव्व भणहु म अलियउ इह वयणु ॥ ८ ॥

मनुष्य सत्य धर्म के पालन से केवलज्ञान को नियम से प्राप्त करते हैं। इसीलिए कहा है- ठऊँलू ३ उदठ सत्य ही भगवान है। अतः हे भव्य प्राणियों! ऐसे महान सत्य धर्म को अपने जीवन में अंगीकार कर अपने आत्म-कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ।

“जय बोलिए भगवान अरहनाथ स्वामी की”

संयम रत्न संभाल

वद समिदि कसायाणं दंडाणं इंदिआणं पंचण्हं ।

धारण पालण णिग्गह चाय जओ संजमो भणिओ ॥ प.सं./प्रा.१२७

पाँच महाव्रतों का धारण करना, पाँच समितियों का पालन करना, चार कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, काय, रूप तीन दण्डों का त्याग करना और पाँच इन्द्रियों को जीतना सो संयम कहा है ।

वद समिदि पालणाए दंडचाएड इंदिअ जाएण ।

परिणम माणस्स पुणो संजम धम्मो हवे णियमा ॥ बा.अणु.७६

व्रत तथा समितियों का पालन, मन-वचन-काय की प्रवृत्तियों का त्याग इन्द्रिय जय यह सब जिसको होता है उसको नियम से संयम धर्म होता है ।

जाँवई णाणिउ उवसमइ तामइ संजदु होई ।

होइ कसायहं वसि गयइ, जीउ असंजदु सोइ ॥ प.प्र.२/४१

जिस समय ज्ञानी जीव शांत भाव को प्राप्त होता है, उस समय संयमी होता है क्रोधादि कषायों के आधीन हुआ वही ज्ञानी जीव असंयमी होता है ।

विषयोरगदष्टस्य कषाय विष मोहितः ।

संयमो हि महामंत्रस्त्राता सर्वत्र देहिनाम् ॥ ३० ॥

जिसको विषयरूपी नाग ने काटा हो और जो कषाय रूपी जहर से मूर्च्छित हो, ऐसे प्राणियों के लिये संयम ही महामंत्र है ।

नृजन्मः फलं सारं यदेतज्ज्ञान सेवनम् ।

अनिगूहितः वीर्यस्य संयमस्य च धारणम् ॥

इस मानव जन्म का सही सार है कि अपनी शक्ति को न छिपाकर संयम को धारण करना और आत्मज्ञान की भावना करना है ।

संयम के भेद -

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसंग विरतानाम् ।

अनगाराणां विकलं सागाराणं ससंगानाम् ॥ रत्न.श्रा.५०

वह चरित्र सफल और विकल के भेद से दो प्रकार का हैं । समस्त प्रकार के परिग्रह से रहित मुनि के सकल चरित्र और ग्रहस्थों के विकल चरित्र होता है ।

दुविहं संजम चरणं सायारं तह हवे णिरायारं ।

सायारं सगंग्थे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं ।। चा.पा./२१

संचम चरण चारित्र दो प्रकार का है सागार और निरागार। सागार तो परिग्रह सहित श्रावक को होता है, बहुरि निरागार परिग्रह से रहित मुनि के होता है।

व्रता भावात्मको भावो जीवस्या संयमो यतः । प.ध.उ./११३५

व्रत के अभाव रूप जो भाव है वह असंयम माना गया है।

विषयों की चाह की दाह नागिन से डंसे हुए प्राणी को लोभादि कषाय का तीव्र विष चढ़ जाता है, इस विष के झाड़ने का अथवा जिस कर्म के उदय से कषाय के विष का वेग चढ़ा है, उसको नष्ट करने के लिए संयम ही महामंत्र है।

भव्य बंधुओं! आज हम दस धर्मों में से ६वें संयम धर्म को समझेंगे। संयम को

परिभाषित करते हुए प्रवचन सार की तात्पर्यवृत्ति टीका में पू. आचार्य जयसेनाचार्य महाराज कह रहे हैं-

चागो य अणारंभो विसय विरागो खओ कसायाणं ।

सो संजमोत्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण ।। २३९-१ ।।

त्याग रूप परिणाम, आरंभ से रहित पना, विषयों से वैराग्य, कषायों का क्षय जहाँ हो जाता है वह संयम है तपश्चरण की अवस्था में विशेष संयम होता है। इसके अतिरिक्त पू. आचार्य नेमीचंद सिद्धान्तचक्रवर्ती गोम्मटसार जीव कांड ग्रंथ में कहते हैं-

वद समिदि कसायाणं दंडाणं तहिदियाण पंचण्हं ।

धारणपालणणिग्गहा चागजओ संजमो भणिओ ।। ४६५ ।।

व्रतों को धारण करना, समितियों का पालन, इंद्रियों को जीतना, दंडो का त्याग करना, कषायों का निग्रह संयम है।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं 'संयम' एक ऐसा धर्म है जिसके विषय में जितना भी कहा जाए कम है। इसकी महिमा अपने आप में अपूर्व है। संयम का लक्षण बताते हुए अन्य शास्त्रों में भी कहा है-

जो जीव रक्खण परो गमणा गमणादि सब कज्जेसु ।

तण छेदं पि ण इच्छदि संजम धम्मो हवे तस्स ।। का.अनु.३९९

जीव की रक्षा में तत्पर जो मुनि गमन-आगमन आदि सब कार्यों में तृण का भी छेद नहीं करना चाहता है, उस मुनि के संयम धर्म होता है।

सम्यक् यमो वा संयमः । ध.७/२,१,३/७/३

सम्यक् रूप से यम अर्थात् नियन्त्रण सो संयम है।

संयमः सकलेन्द्रिय व्यापार परित्यागः । नि.सा./ता.पृ./१२३

समस्त इन्द्रियों के व्यापार का परित्याग सो संयम है।

तीर्थकरों के दीक्षा कल्याणक के समय जब उन्हें वैराग्य होता है तो स्वर्ग से देवता गण आते हैं व दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाते हैं। वे विक्रिया के द्वारा एक पालकी की रचना करते हैं जिसमें बैठकर तीर्थकर देव वन की ओर जाते हैं। जब तीर्थकर देव उसमें बैठते हैं। और जब वे बैठ जाते हैं और पालकी को उठाने का अवसर आता है तो देवता, मनुष्य व विद्याधरों में प्रतिद्वंदता खड़ी जो जाती है। देव कहते हैं भगवान के जन्म लेने के ६ माह पूर्व से हम उनकी सेवा में निरत हैं और जैसा उत्सव हम मना सकते हैं वैसा मनुष्य नहीं मना सकते अतः पालकी हम उठायेंगे। विद्याधर कहते हैं हम विद्या संपन्न हैं अतः श्रेष्ठ हैं इसलिए पालकी हम उठायेंगे परंतु भूमि गोचरी भी कहाँ शांत बैठने वाले थे वे भी आग्रह करते हैं भले हमारे पास कोई विद्या न हो परंतु हमारी भावनाएँ किसी ऋद्धि से कम नहीं। तीर्थकर भी मनुष्य हैं वे हमारी जाति के हैं, हम भी उनकी तरह संयम को धारण कर सकते हैं अतः हम ही पालकी उठायेंगे। अब क्या किया जाए ? थो निर्णय हेतु सभी तीर्थकर के माता-पिता के पास पहुँचते हैं। निवेदन करते हैं महाराज हमारा निर्णय कीजिए कि हम क्या करें तब वे बोलते हैं। मनुष्य ही प्रथम पालकी उठाने के अधिकारी है क्योंकि मनुष्य जीवन में संयम को धारण किया जा सकता है, मनुष्य ही कर्मों का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं, अतः मनुष्य गति ही श्रेष्ठ व पावन है।

हमें गौरव है कि हमने ऐसी गति को पाया जिससे संपूर्ण कर्मों का क्षय किया जा सकता है, संयम व तप को धारण किया जा सकता है। भले ही देव संपूर्ण द्वादशांग के पाठी क्यों न हो। परंतु संयम को धारण नहीं कर सकते, ३३ सागर तक अहर्निश तत्त्व चर्चा में लगे रहते हैं परंतु संयम धारण नहीं कर सकते और बिना संयम के मुक्ति संभव नहीं।

वैदिक संस्कृति में भी कहा जाता है-

बड़े भाग मानुस तन पावा, सुर दुर्लभ ग्रंथन में गावा ।

इस मनुष्य पर्याय के लिए स्वर्ग के देवता भी तरसते हैं। क्यों ? क्या कारण है ? कारण यही है कि मनुष्य संयम धारण कर सकता है और निर्वाण की यात्रा भी कर सकता है 'संयम' की परिभाषा देते हुए पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज ने सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ में कहा है-

समितेषुप्रवर्तमानस्य प्राणीन्द्रिय परिहारस्संयमः ।

समितियों में प्रवृत्त करने वाले मुनियों के लिए जो प्राणियों तथा इंद्रियों का परिहार होता है वह संयम है। "प्राणियों की रक्षा व इंद्रियों का दमन करना ही संयम है।" अन्य (स्थानों) शास्त्रों में कहा है- जिसमें ५ स्थावरों व एक त्रस की रक्षा की जाती है तथा ५ इंद्रिय और मन को वश किया जाता है उसे संयम कहते हैं।

पंचरस पंचवण्ण दो गंधे अट्टफास सत्तसरा ।

मणसा चोद्दस जीवा इंदिय पाणा य संजमो णेओ । ।

पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध, ८ स्पर्श, सात स्वर ये सब मन सहित २८ विषय हैं इनका निरोध सो इन्द्रिय संयम है और १४ प्रकार के जीवों की रक्षा करना सो प्राणी संयम है।

संयम के दो भेद हैं- (१) प्राणी संयम (२) इंद्रिय संयम पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति इन पंच स्थावरों तथा त्रस प्राणियों की अर्थात् षट्काय के जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है।

बड़े-बड़े जीवों को तो हम देख लेते हैं। परंतु बहुत सूक्ष्म जीव ऐसे होते हैं जो सहजता में दिखाई भी नहीं देते हैं बड़े ध्यान से देखे तब दिखते हैं ऐसे जीवों की रक्षा के लिए मुनिजन अपने हाथों में एक पिच्छिका रखते हैं और पिच्छिका से उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देते हैं। चूंकि पिच्छि संयम पालन में हेतु है अतः उसे संयमोपकरण कहते हैं। यह इतनी कोमल होती है कि किसी भी प्राणी को इससे कष्ट नहीं होता। वे संत जन मात्र प्राणी की रक्षा, दयाधर्म व अहिंसा का उपदेश नहीं देते बल्कि पालन करते हैं, किसी भी वस्तु को उठाते-रखते समय पहले सावधानी पूर्वक मार्जन करते हैं फिर उठाते हैं यह करुणा का प्रतीक है। जिसका मन पवित्र होता है उसी के अंदर करुणा व दया होती है। तथा जो करुणाशील होगा वही दूसरे की रक्षा में दत्तचित्त होगा वे दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट समझेगा। प्राणी रक्षा के भाव सहज रूप से उसमें पाये जाते हैं। मुनिजन करुणा व दया की साक्षात् मूर्ति होते हैं। जो स्थावरों तक की हिंसा के त्यागी होते हैं। फूल, पत्ते कभी भी नहीं तोड़ते भूल से, प्रमाद से पैर भी पड़ जाए तो दुःखी

होते हैं पश्चात्ताप करते हैं। यही वास्तविक प्राणी संयम है। वे आरंभ-सारंभ के भी त्यागी होते हैं वे अपने हाथों से कोई भी आरंभ का काम नहीं करते अंधेरे में रह लेंगे पर लालटेन आदि अपने हाथों से नहीं जलाते। उनके अचेलक्य व्रत (वस्त्र का त्याग) के पीछे भी अहिंसा का सिद्धान्त छिपा है। कपड़े रखेंगे तो मैले होंगे फटेंगे तो धोना पड़ेगा, सिलना पड़ेगा और इन सभी कार्यों असंख्यातों जीव नष्ट हो जाते हैं प्राणी संयम के पालन के लिए ही वे केशलौच करते हैं। एक बार ही खड़े-खड़े भोजन ग्रहण करना यह भी प्राणी संयम का ही प्रतीक है। वे उद्दिष्ट के भी त्यागी होते हैं क्योंकि उसमें भी छह निकाय के जीवों की हिंसा संभव है।

बंधुओं! मुनिजन उत्कृष्ट प्राणी संयम पालते हैं परंतु गृहस्थावस्था में इतना संयम संभव नहीं है। क्योंकि गृहस्थ को तो आरंभ-सारंभ घर-गृहस्थी, व्यापार आदि के निमित्त करना ही पड़ता है। परंतु यथाशक्य वह भी जीवन में संयम को धारण करता है। परंतु मोह की लीला अपरंपार है कुछ लोग तो सक्षम होते हुए भी जीवन में एक नियम का भी पालन नहीं कर पाते उनके लिए रविषेणाचार्य महाराज पद्म पुराण में सावधान करते हुए कहते हैं-

एकोऽपि नास्ति येषां तु नियमः प्राणधारिणाम्।

पशवस्तेऽथवा भग्न, कुम्भा गुण विवर्जिता ॥ १४/३५० प.पु. ॥

जिन प्राणियों के एक भी नियम नहीं है वे पशु हैं अथवा रस्सी से रहित (व्रतशील आदि गुणों से रहित) फूटे घड़े के समान हैं।

नियम से रहित प्राणी इस पृथ्वी पर भारभूत है। अतः पू. आचार्य भगवन् ऐसे प्राणियों को नाना प्रकार से समझाते हुए कहते हैं कि भव्य प्राणी तू संयम धारण कर उसी से आत्मा का हित होगा।

विषयोरगदएटस्य काषाय विषमोहितः।

संयमो हि महामंत्रस्त्राता सर्वत्र देहिनाम् ॥ ३० ॥

विषयों की चाह की दाह नागिन से डंसे हुए प्राणी को लोभादि कषाय का तीव्र विष चढ़ जाता है, इस विष के झाड़ने का अथवा जिस कर्म के उदय से कषाय के विष का वेग चढ़ा है, उसको नष्ट करने के लिए संयम ही महामंत्र है, इसलिए प्रज्ञावान को यही उचित है कि वह संयम धारण कर आत्म कल्याण करे।

प्राणी संयम के बाद अब दूसरा इंद्रिय संयम है। प्रायः देखा जाता है कि सारा संसार आज इंद्रियों का गुलाम बना हुआ है। एक वह समय था जबकि भारत देश भी आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

विदेशियों का गुलाम था, बाहर की स्वतंत्रता तो फिर भी आसान है यद्यपि पराधीनता कष्टदायी है कहा जाता है चंद्रलोक से चीन की दीवाल दिखती है कितनी लंबी-चौड़ी है बहुत विशाल है, वह कैसे बनी ? तो मात्र गुलाम/बंदी लोगों से बनवायी गई। पहले के समय में बड़े-बड़े परकोटे गुलाम लोगों से बनवाए जाते थे, ऐसे कठिन से कठिन कार्य करवाये जाते थे जिन्हें सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। परवशता में इतनी गुलामी करना पड़ता है।

परंतु पू. आचार्य महाराज कहते हैं कि इस गुलामी से स्वतंत्रता पाना, तो फिर भी सहज है परंतु जिन इंद्रियों की गुलामी में आज सारा संसार लगा है, उन इंद्रियों की गुलामी से छुटकारा पाना आसान काम नहीं है। कुत्ता रोटी को देखता है तो पूछ हिलाने लगता है, कोई स्पर्शन इंद्रिय का गुलाम है तो कोई रसना, घ्राण, चक्षु, व कर्ण इंद्रिय का गुलाम है, बैठने को डनलप का गद्दा चाहिए, टी.वी. सोफा सेट, फ्रिज, कूलर, ए.सी. आदि चाहिए। ये सब सुविधाएँ पुण्य योग से प्राप्त होती हैं और प्राप्ति हो भी जाए तो भी पराधीनता है।

आज का प्राणी स्पर्शन इंद्रिय का गुलाम हो गया है, यदि एक दिन भी लाईट न हो तो व्यक्तियों को नींद नहीं आती और वे रोड पर घूमते-फिरते नजर आते हैं। जब कभी कोई नया व्यक्ति विहार करता है (महाराजों के साथ) तो पैरों में फोले पड़ जाते हैं। क्योंकि अभ्यास नहीं है, थोड़ी सी धूप लगती है तो चेहरा लाल हो जाता है। क्योंकि आज व्यक्ति सुविधा संपन्न हो गया पूर्णरूपेण इंद्रियों का गुलाम हो गया।

एक स्पर्शन इंद्रिय के वश में हुआ हाथी अपनी स्वाधीनता खो देता है। रसना इंद्रिय के लोभ में फंसी मछली अपने प्राण छोड़ देती है, घ्राण इंद्रिय के चक्कर में पड़ा भौरा काष्ठ भेदन की सामर्थ्य को रखने वाला होता हुआ भी एक पुष्प को भेद नहीं पाता और जीवन को खो बैठता है। चक्षु इंद्रिय के आधीन हुआ पतंगा लाईट से टकरा टकरा कर प्राण गंवा देता है। तथा कर्णेन्द्रिय के आधीन हुआ हिरण व सर्प अपनी स्वतंत्रता खो देते हैं।

बंधुओं! जब एक-एक इंद्रिय के वशीभूत हुए प्राणी ऐसी दुर्दशा को प्राप्त हो जाते हैं तो मनुष्य की क्या बात कहें वह तो पांचों इंद्रियों का ही अहर्निश दास बना हुआ है। सोचिए ? आपकी क्या हालत होगी। पाँच इंद्रिय व मन को वश में करना इंद्रिय संयम है। मन की भी बड़ी विचित्र दशा है यदि उसे किसी कार्य में व्यस्त न किया जाए तो वह तो असंयम का सबसे बड़ा हेतु बन जाता है। कहा भी है-

जीवा चउदसभेया इंदिय विसया य अटवीसं तु ।

जे तेसु गेय विरया असंजया ते मुणेयव्वा ।। प.सं./प्रा.१/१३७

जीव १४ भेद रूप है और इन्द्रियों के विषय २८ हैं जीवघात और इन्द्रिय विषयों से विरत नहीं होने को असंयम कहते हैं। जो इनसे विरत नहीं है उन्हें असंयत जानना चाहिए।

चारित्र मोहस्स सर्वघातिस्पर्धक स्योदयात् प्राण्युपघातेन्द्रिय

विषयेद्वेषाभिलाष निवृत्ति परिणाम रहितोऽसंयत् औदयिकः ।स.ब.२/६/६/१०९

चारित्र मोह के उदय से होने वाली हिंसादि और इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति असंयम है।

एक बार एक सेठ जी के हाथ एक चिराग लगा उसने सोचा इसे साफ कर दूं तो जलाने के काम आयेगा जैसे ही उसने उसे साफ करने के उद्देश्य से उस पर हाथ फेरा तो उसके सामने एक भीमकाय जिन्न आकर खड़ा हो गया और बोला- “हुकुम करें मेरे आका ?” वे सेठ जी बड़े प्रसन्न हुए और जिन्न से अपने सारे काम करा लिये, दूसरे दिन जिन्न फिर सेवा में उपस्थित हुआ। और बोला- “हुकुम करें मेरे आका ?” सेठ जी बोले अब कोई काम नहीं। तब जिन्न बोला- नहीं, मुझे कुछ काम किये बिना चैन नहीं पड़ती यदि मुझे कुछ काम न दोगे तो तुम्हारा ही काम तमाम कर दूंगा। सेठ जी बड़े घबरा गये और दौड़े-दौड़े एक मुनि महाराज के पास पहुँचे और सारी घटना कह सुनायी। महाराज, रक्षा कीजिए। मुनि मजाराज जी ने कुछ देर मौन रहे फिर बोले- सेठ जी, आप उस जिन्न से कहिये कि उसे एक सीढ़ी पर चढ़ने उतरने का काम करना है जब तुम्हें कुछ काम हो तो उससे करा लो और जब कुछ काम शेष न रहे तो उसे सीढ़ी पर चढ़ने उतरने के काम में लगा दो। सेठ जी ने महाराज जी के द्वारा कही युक्ति को अपनाया और प्राणों की रक्षा की।

इसी प्रकार बंधुओं! यह मन भी उस जिन्न के ही समान है यदि उसे किसी कार्य में व्यस्त न रखो तो यदवा-तदवा प्रवृत्ति करने लगता है और पापास्त्रव का हेतु बन जाता है। पांच इंद्रिय और मन इन छह को यदि वश में न किया जाए तो इनके निमित्त से असंयम होता है। संयम एक अमूल्य रत्न है जिसे संभालना बड़ा कठिन है। पूजन की पंक्तियों में कहा गया है-

“संयम रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत है।”

वे व्यक्ति बड़े पुण्यशाली होते हैं जिनके जीवन में संयम आ जाता है। संयम एक ऐसी चाबी है जिससे मोक्ष रूपी ताला खुलता है। संयमी ही आत्मा का स्वसंवेदन कर सकता है क्योंकि जो विषयों में आनंद लेता है वह आत्मा का आनंद नहीं ले सकता।

इष्टोपदेश में पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज कहते हैं-

यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्व मुत्तमम् ।

तथा-तथा न रोचंते, विषया सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

यथा-यथा न रोचंते, विषया सुलभा अपि ।

तथा-तथा समायाति, संवित्तौ तत्त्व मुत्तमम् ॥ ३८ ॥

जैसे-जैसे हमें आत्मा का रस आने लगता है तो सारे रस नीरस हो जाते हैं । और जब हम विषयासक्त होते हैं तब आत्म प्रतीति संभव नहीं ।

अतः सदैव जीवन को संयम से श्रृंगारित करने का प्रयत्न करो । उस 'संयम धर्म' की महीमा को गाते रङ्घुई कवि दस धर्म की पूजा की जयमाल में कहते हैं-

दयाढयं संयमं मुक्तिकर्तारं स्वेच्छयातिगम् ।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥ १ ॥

निर्वाण पद को प्रदान करने वाला, दया से पूर्ण ऐसे संयम की प्राप्ति के लिए मैं उसकी पूजा करता हूँ ।

संजमु जणि दुल्लहु तं पाविल्लहु जो छंडइ पुणु मूढमइ ।

सो भमइ भवावलि जर मरणावलि किं पावेसइ पुणु सुगइ ॥ २ ॥

संयम धर्म लोक में दुर्लभ है, जो मूढमति उसे प्राप्त कर छोड़ देता है वह मूर्ख है । तथा जरा और मरण के चक्र रूप संसार में अनेक योनियों में भ्रमण करता फिरता है भला वह सुगति को कैसे प्राप्त कर सकता है ? संयम के साथ अल्पकाल तक जीना भी श्रेष्ठ है । इस बात को स्पष्ट करते हुए पू. आचार्य महाराज कहते हैं-

वरं तत्क्षणतो मृत्युः शील संयम धारिणम् ।

न तु सच्छीजलभङ्गेन कल्मान्तिमपि जीवितम् ॥ २७९ ॥

शील, संयम के धारी साधुओं का संयम पालते हुए शीघ्र मरना अच्छा है परंतु सम्यक् शील को भंग करके कल्पों काल तक जीना भी श्रेष्ठ नहीं है ।

पू. आचार्य भगवन् समझा रहे हैं कि हे शिष्य ! यदि संयम घात का अवसर आ जाए तो समाधि मरण कर लेना चाहिए परंतु संयम का खंडन कर बहुत जीना अच्छा नहीं है ।

एक बार शांति सागर जी महाराज के चारित्र-चक्रवर्ती ग्रंथ में एक उल्लेख मिला - एक बार एक व्यक्ति को वैराग्य हुआ उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली । दीक्षा लेने के आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

उपरांत एक जगह उन्होंने पढ़ा कि दीक्षा लेने के उपरांत इतने साधु नरक जायेंगे अतः वे शीघ्र संयम छोड़ अपने घर पहुँचे और पत्नी से भाखरी माँगने लगे। पत्नी बोली अभी आती हूँ और वह जाकर पंचायत के लोगों को बुला लाई। सारी पंचायत इकट्ठी हो गई। लोगों ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया और पूछा भाई! “आपने ऐसा क्यों किया?” तो वे सज्जन बोल – मैंने एक शास्त्र में पढ़ा है कि इतने मुनि नरक जायेंगे। अतः विचार किया कि यदि घर पर रहूँगा तो कम से कम नरक तो नहीं जाऊँगा। तब लोगों ने समझाया अभिप्राय समझना चाहिए। जो अच्छी तरह संयम का पालन करेंगे वे नरक नहीं जायेंगे अपितु जो संयम से भ्रष्ट होकर उसे छोड़ देंगे वे ही नरक जायेंगे। वे सज्जन सावधान हुए उन्होंने गुरु के पास जाकर प्रायश्चित्त लिया और व्रतों की शुद्धि की।

एक बार भी किसी के मन में संयम को छोड़ने के भाव उत्पन्न हो जाते हैं तो एक दिन उसका संयम नियम से चला जाता है। और ऐसे व्यक्ति ही नरक जायेंगे तथा संसारावली में भ्रमण करेंगे। अतः भूलकर भी संयम को नहीं छोड़ना। संयम कायरों को नहीं, वीरों के लिए दिया जाता है। सच्चे संयत प्राण देना स्वीकार करते हैं परंतु पीठ दिखाना नहीं।

संजमु पंचिदिय - दंडणेण, संजमु जि कसाय - विहडणेण।

संजमु दुद्धर - तव - धारणेण, संजमु रस - चाय वियारणेण ॥ ३ ॥

पंचन्द्रियों को दमन करने से संयम होता है साथ ही कषायों का निग्रह करने से संयम होता है। कषायों को जीतना बहुत कठिन है। तपस्या तो बहुत कर लेते हैं परंतु कषायों को नहीं जीत पाते। तपस्वियों में क्रोध चाण्डाल की उपमा को प्राप्त है कषायें आत्मा के समस्त गुणों को जला देती है अतः इन कषायों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए तभी संयम संभव है। संयम दुर्धर तप को धारण करने से होता है। भाव संग्रह में - असंयमियों के तप को गजधूलिवत कहा है। और संयम रस परित्याग तप का बार-बार चिंतन करने से होता है। गुरुदेव पू. आचार्य विमल सागर जी महाराज एवं पू. आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज शिष्यों को उसी वस्तु का त्याग कराते थे जो सबसे प्रिय हो। घी, नमक आदि रसों का त्याग कराते थे।

संजमु उववास विजंभणेण, संजमु मण पसरहं थंभणेण।

संजमु गुरु काय किलेसणेण, संजमु परिगह गह - चायणेण ॥ ४ ॥

उपवासों को बढ़ाने से संयम होता है, बेला, तेला आदि के उपवास करने से रसना व स्पर्शन इंद्रिया क्षीण हो जाती है। संयम चंचल चित्त के प्रसार को रोकने में कारण है। बिना ब्रेक की गाड़ी खतरनाक होती है, जिसके जीवन में संयम रूपी ब्रेक नहीं होता वह आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

दुर्गति का पात्र होता है। संयम बहुत कायक्लेश से होता है तथा ज्योतिष में ९ ग्रह हैं दसवां ग्रह परिग्रह है तथा संयम, परिग्रह रूपी ग्रह का त्याग करने से होता है।

संजमु तस थावर रक्खणेण, संजमु सत्तत्थ परिक्खणेण।

संजमु तणु जोय णियंतणेण, संजमु बहु गमणु चयंतएण।। ५।।

संयम त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा करने से होता है, मन, वचन, काय के नियंत्रण करने से संयम होता है, सात तत्त्वों की परीक्षा तथा बहुत गमन का त्याग करने से संयम होता है।

संजमु अणुकंप कुणंतएण, संजमु परमत्थ - वियारणेण।

संजमु पोसइ दंसणहं पंथु, संजमु णिच्छय णिरु मोक्ख पंथु।। ६।।

अनुकंपा, दया, करुणा से संयम होता है, परमार्थ की बार-बार भावना करने से होता है, संयम सम्यग्दर्शन के मार्ग को मजबूत करता है। तथा यह मोक्ष का मार्ग है।

संजमु विणु णर भव सयलु सुण्णु, संजमु विणु दुग्गइ जि उववण्णु।

संजमु विणु घडिय म इक्क जाउ, संजमु विणु विहलिय अत्थि आउ।। ७।।

संयम के बिना मनुष्य भव शून्य के तुल्य है, संयम के बिना जीवन का कोई मूल्य नहीं, इसके बिना प्राणी नियम से दुर्गति को प्राप्त करता है।

पूज्य पू. आचार्य गुरुदेव विमल सागर जी महाराज हमेशा कहते थे – संयम के बिना एक पल भी व्यर्थ मत जाने दो।

इह भवि पर भवि संजमु सरणु हुज्जउ जिणाहें भणिउ।

दुग्गइ सर सोसण खर किरणोवम जेण भवालि विसमु हणिउ।। ८।।

इस लोक और परलोक में शरणभूत पदार्थ संयम है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है, यह दुर्गति रूपी तालाब का शोषण करने के लिए तीक्ष्ण किरणों के समान है। इससे ही विषय भवभ्रमण का नाश होता है।

अतः हे भव्य प्राणियों! आप प्रसन्नता पूर्वक संयम को धारण करो। तथा भावना भाओं कि जब तक निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक इसकी निरंतर वृद्धि होती रहे। क्योंकि कहा भी है-

"By self control one day we get salvation"

“संयम से ही एक दिन मुक्ति होगी।“

“बोलिए मल्लिनाथ भगवान की जय“

“कर्म क्षणार्थं तप्यते इति तपः”

आज्ञा मात्र फलं राज्यं, ब्रह्मचर्यं फलं तपः।

ज्ञान मात्र फलं विद्या, दत्त भुक्त फलं धनम्।। स.कौ.३१

राज्य का फल आज्ञा मात्र है, तप का फल ब्रह्मचर्य, विद्या का फल ज्ञान मात्र प्राप्त करना, और धन का फल दान करना तथा स्वयं भोग करना है।

चिंतामणि स्तपः पुंसो, धेनुः काम दुधा तपः।

तिलकोऽस्ति तपो भव्यस्तपो मान विभूषणम्।। म.क.१५४५

तप मनुष्यों के लिए चिंतामणि रत्न है, कामधेनु है, ललाट के सुंदर तिलक के समान साधु जीवन की शोभा बढ़ाने वाला है तथा तप सम्मान का भूषण है।

गाणा वर मारुद जुदो सील वर समाधि संजमुज्जलीदो।

दहइ तवो भव बीयं तण कट्टादी जहा अग्गी।। मू.चा.७४९

श्रेष्ठ ज्ञान रूपी हवा युक्त शील, श्रेष्ठ समाधि व संयम से प्रज्ज्वलित हुई तप रूपी अग्नि भव बीज को जला देती है जैसे कि अग्नि तृण काठ आदि को जला देकती है।

समस्त बहिर्द्रव्येच्छा निवृत्ति लक्षण तपश्चरण। द्र.सं./२१/६३/४

सम्पूर्ण बाह्य द्रव्यों की इच्छा को दूर करने रूप लक्षण का धारक तपश्चरण कहा है।

प्रायश्चित्त विनय वैय्यावृत्ति स्वाध्याय व्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्। त.सू./९/२०

प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ये ६ अंतरंग तप है।

अनशनावमौदर्यं वृत्ति परिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन कायक्लेशा

बाह्यं तपः। त.सू./९/१९

अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश ये ६ बाह्य तप है।

यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम्।

लभते स न निर्वाणं तत्त्वापि परमं तपः।। समाधी तंत्र ३३

जो आत्मा और शरीर को भिन्न नहीं जानता है वह घोर तपश्चरण करके भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।

मानुष्य दुर्लभं लोके पाण्डि त्यमति दुर्लभम्।

अर्हच्छा सनमत्यन्तं तपस्त्रैलोक्य दुर्लभम्।। स.श्लो.स.

लोक में मनुष्य जन्म दुर्लभ है पाण्डित्य (भेद विज्ञान) अति दुर्लभ है जैन धर्म अत्यन्त दुर्लभ है और तप तीनों लोकों में दुर्लभ है।

जत्थ कसाय गिरोहो बंभं जिणपूयणं अणसणं च ।

सो सब्बो चेव तवो विसेसओ मुद्दलोयंमि ।। स.सु.

जहाँ कषायों का निरोध, ब्रह्मचर्य का पालन, जिन पूजा तथा अनशन किया जाता है वह सब तप है विशेष कर मुग्ध अर्थात् भक्त जन यही तप करते हैं।

तपसा निर्जरा च । त.सू.९/३

तप से निर्जरा होती है।

बल वीरियमासेज्ज य खेत्ते काले सरीर संहडणं ।

काओ सगं कुज्जा इमे दु दोसे परिहंरेतो ।। मू.आ.६६७

बल और आत्म शक्ति का आश्रय कर क्षेत्र, काल, शरीर के संहनन इनके बल की अपेक्षा कर कहे जाने वाले दोषों का त्याग करता हुआ कायोत्सर्ग करे।

यह तपश्चरण ही चिंतामणि दिव्यरत्न है, महान कल्पद्रुम है, तप ही सदा रहने वाला निधान खजाना है और तप ही उत्कृष्ट कामधेनु है। ऐसे परम तप को धारण करने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए।

पर्युषण पर्व की बेला में आज हम सभी 'उत्तम-तप' धर्म को समझने का प्रयास करेंगे।

तप की व्याख्या करते हुए पू. आचार्य महाराज कहते हैं-

'तप्यते इति तपः' जिसके माध्यम से आत्मा को तपाया जाए उसे तप कहते हैं। इसके बिना कर्मों का क्षय व मोक्ष संभव नहीं है। अन्य शास्त्रों में भी आचार्यों ने तप के स्वरूप को बताते हुए कहा है-

इह पर लोय सुहाणं गिरवेक्खो जो करेदि सम-भावो ।

विबिहं काय किलेसं तब धम्मो गिम्मलो तस्स ।। का.अनु.४००

जो समभावी इस लोक और परलोक के सुख की अपेक्षा न करके अनेक प्रकार का कायक्लेश करता है उसके निर्मल तप धर्म होता है।

विसयकषाय विणिग्गहभावं कारुण झाणसज्झाए ।

जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि गियमेण ।। वा.अणु.७७

इन्द्रिय विषयों तथा कषायों का निग्रह कर ध्यान और स्वाध्याय के द्वारा जो आत्मा को भावित करता है उसी को तप धर्म होता है।

कर्ममल विलय हेतो बौधदृशा तप्यते तपः प्रोक्तम् ।। प.वि./१/९८

सम्यग्ज्ञान रूपी नेत्रों को धारण करने वाले साधु के द्वारा जो कर्म रूपी मैल को दूर करने के लिए तपा जाता है उसे तप कहा गया है।

अनुगृहीत वीर्यस्य मार्गाविरोध कायक्लेश तपः । स.सि./६/२४/३३८/१२

शक्ति को न छिपा कर मोक्षमार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश देना यथाशक्ति तप है। बड़े-बड़े तीर्थकरों ने भी तप धर्म को स्वीकारा तभी उन्हें मुक्ति की प्राप्ति हो सकी। खदान से जब को कोई सुवर्ण निकालते हैं तब वह अशुद्ध अवस्था में होता है उसे शुद्ध करने हेतु तपाया जाता है १६ ताव दिये जाते हैं तभी वह शुद्ध होता है। इसी प्रकार आत्मा को तपाने से कर्मों की निर्जरा होती है। परंतु विशेषता यह है कि आत्मा को तपाने से वह गर्म नहीं होती। यदि गर्म हो जाए तो कर्मों की संवर व निर्जरा नहीं होगी अपितु आस्त्रव, बंध ही होगा। तपस्वी जन बड़ी-बड़ी साधना करते हैं पर केंद्र को शीतल रखते हैं। जैसे सूर्य के अंदर आतप नाम कर्म होता है, जिसके कारण वह मूल में ठंडा व उसकी किरणें गर्म होती है।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं - शरीर भले गर्म हो परंतु मन व आत्मा गर्म नहीं होना चाहिए, मन और आत्मा गर्म होगी तो सम्यक् तप नहीं हो सकेगा। अब प्रश्न यह है कि आत्मा गर्म होती क्यों है ? तो आत्मा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय रूपी अग्नि के कारण गर्म होती है, यदि आत्मा गर्म हो जाए तो अंतरंग के सारे गुण ध्वस्त हो जायेंगे, बाहर से तपाओगे तो कर्मों का क्षय होगा। परंतु ध्यान रखना शरीर को जलाने से आत्मा कर्मों से मुक्त नहीं होती। यदि शरीर को जलाने से मुक्ति होने लगे, तो संपूर्ण जलाने वाले प्राणियों को मोक्ष होना चाहिए। एक भिन्न ही अग्नि है जो कर्मों का क्षय करती है वह अग्नि है 'तप'। तप के माध्यम से कर्म रूपी जंजीरे शीघ्र टूट जाती है। तथा आत्मा निर्मल हो जाती है। पू. आचार्य कुंदकुंद महाराज समयसार जी में भी कहते हैं-

जह धाऊ धम्मंतो सुज्झदि सो अग्गिणा दु संतत्तो ।

तवसा तधा विसुज्झदि जीवो कम्महि कणयं व ।। मू.चा.२४३

जैसे तपाया हुआ स्वर्ण पाषाण अग्नि से संतप्त होकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार स्वर्ण पाषाण की भांति यह जीव तप के द्वारा कर्मों से शुद्ध हो जाता है।

वारस विहेण तवसा णियाण रहियस्य णिज्जरा होदि ।

वैरग भावणादो गिरहंकारस्स णाणिस्स ।। क.अ.

निदान रहित, निरभिमानी ज्ञानी पुरुष के वैराग्य की भावना से अथवा बारह प्रकार के तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है।

बहुत से लोग बाहर में तप तो बहुत करते हैं परंतु मन की तपस्या नहीं करते। मन को पवित्र बनाये बिना मात्र बाह्य तप मुक्ति का हेतु नहीं बनता वह तो मिथ्या तप है। मिथ्या तप से लौकिक लाभ भले हो परंतु पारमार्थिक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। पू. आचार्य महाराज अपने यश. चम्पू ग्रंथ में इसी बात के लिए कह रहे हैं-

ज्ञानैर्मनो वपुर्वित्तैः नियमैरिन्द्रियाणि च ।

नित्यं यस्य प्रदीप्तानि स तपस्वी न वेषवान् ।। यश.चम्पू ८/४१२

वास्तव में वही मनुष्य तपस्वी है जिसका मन ज्ञान से, शरीर धन से और इन्द्रिय गण संयम से नित्य शोभायुक्त है, मात्र वेश से कोई तपस्वी नहीं होता है। पंडित दौलतराम जी अपने छहदाला ग्रंथ में कहते हैं-

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध विध देहदाह ।

आतम अनात्म के ज्ञान हीन, जे जे करनी ते करन छीने ।।

जो साधक ख्याति, पूजा, लाभ की भावना से विभिन्न प्रकार के तप तपता है वह आत्मा, अनात्मा के ज्ञान से हीन होकर जो भी तपस्या करता है वह मात्र शरीर सुखाने का हेतु है। आगे कहते हैं-

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग ।

जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आत्म सुपाग ।।

यह सब मिथ्यातप आत्मा का अहित करने वाले हैं अतः इनका त्याग कर प्रत्येक प्राणी को आत्म हित में लगना चाहिए। तभी यह जगत/संसार का परिभ्रमण दूर हो सकेगा। पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज ने कहा भी है-

“कर्म क्षयार्थं तप्यते इति तपः” ।। स.सि./९/६/३१२/११

कर्मों के क्षण की भावना से जिसे तपा जाए वही वास्तविक तप है। ख्याति पूजा की भावना को लेकर, तथा आत्म भावना से शून्य होकर जो तप किया जाता है वह अज्ञान तप है। श्री समयसार जी में पू. आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं-

परमदुम्हि दु अठिदो, जो कुणदि तवं वदं च धारेई ।

तं सत्त्वं बाल तवं, बाल वदं विति सब्वण्हु ।। १५२ स.सा. ।।

जो आत्म स्वरूप में तो स्थिर नहीं है किंतु तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है उस सब तप, व्रत को सर्वज्ञ देव, अज्ञान तप/अज्ञान व्रत कहते हैं।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं यदि तुमने लाभ के लिए तपस्या की है तो वह एक प्रकार का Business है, कमाई का एक तरीका है इससे बढ़कर कुछ नहीं। पूजा-सम्मान मिले, आदर मिले, लोक नमस्कार करें, पूजा करें, उच्चासन पर बैठाए, पाद प्रच्छालन करें, अर्चना करें, श्रीफल चढ़ायें ये सब भावनाएँ हैं और आप तप करें तो वह सम्यक तप नहीं है, यह सब मिथ्या तप है इससे मोक्ष तो दूर, मोक्षमार्ग की भी प्राप्ति नहीं होगी। सम्यग्दर्शन के बिना कुछ नहीं हो सकता। उसके ज्ञान, चारित्र और चौथे नं. पर तप है। भगवती आराधना में चार प्रकार की आराधनाएँ कही हैं-(१) दर्शन आराधना (२) ज्ञान आराधना (३) चारित्र आराधना (४) तप आराधना। चौथे नं. पर तप आराधना है। जब बच्चा स्कूल में एक कक्षा पास कर लेता है तो दूसरी, फिर दूसरी से तीसरी और तीसरी सेक चौथी में पहुँचता है। परंतु कदाचित् लौकिकता में पहली से कोई Direct चौथी में चला जाए यह एक बार संभव है। परंतु परमार्थ में यह संभव नहीं है। सम्यग्दर्शन की Class के साथ ज्ञान व चारित्र की Class उत्तीर्ण कीजिए, तब जाकर तप का No. आयेगा। जिसने सम्यक चारित्र को धारण कर तप किया है वह तप, सम्यक तप है। अन्यथा चारित्र के बिना किया गया तप गजस्नानवत् होता है। पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं विवेक के साथ किया गया तप, तप है अन्यथा आतप है और आतप ही नहीं आफत है। छहढाला में भी कहा है-

कोटि जन्म तपे, ज्ञान बिन कर्म झरे जें।

ज्ञानी के छिनमाहि, त्रिगुप्ति तें सहज टरे तें।।

अज्ञानी करोड़ों में तपस्या करके जितने कर्मों का क्षय करता है ज्ञानी उतने कर्मों का क्षय त्रिगुप्ति के बल से क्षण मात्र में कर लेता है। कुछ लोग यथार्थ अर्थ में नहीं पहुँचते और मात्र ज्ञान से कर्म क्षय होते हैं ऐसा मान बैठते हैं। उन लोगों से मेरा कहना है यदि मात्र ज्ञान से कम क्षय होने लग जाए तो सर्वार्थसिद्धि के देवों के संपूर्ण कर्म क्षय को प्राप्त हो जाने चाहिए क्योंकि वे ३३ सागर की आयु मात्र तत्त्वचर्चा में ही व्यतीत करते हैं। परंतु यहाँ त्रिगुप्ति शब्द महत्वशाली है। रत्नत्रय को धारण कर विवेक के साथ किया गया तप वास्तव में कर्म क्षय का हेतु है। तप के विषय में मूलाचार जी में कहा है-

तपश्चिन्ता मणिर्दिव्य, स्तपः कल्पद्रुमो महान्।

तपो नित्यं निधानं, तपः कामधेनु रुर्जिता।। मू.प्र.२११७।।

यह तपश्चरण ही चिंतामणि दिव्य रत्न है, महान कल्पद्रुम है, तप ही सदा रहने वाला निधान (खजाना) है और तप ही उत्कृष्ट कामधेनु है। जिस तप की इतनी महिमा है उस तप को समय रहते धारण कर लेना चाहिए। कहा भी है-

यावत् स्वास्थ्यं शरीरस्य यावच्चेन्द्रिय सम्पदः ।

तावद्युक्तं तपः कर्तुं वाद्भक्त्ये केवल श्रमः ॥ १७ ॥

जब तक शरीर की तन्दुरुस्ती है और जब तक इन्द्रियों में प्रसन्नता है तब तक तप करना उचित है क्योंकि वृद्धावस्था होने पर इच्छाओं को रोकना मात्र खेद उत्पन्न करना है। 'तप' शब्द दो अक्षर त और प से मिलकर बना है। जो तारे व पार करे वह, तप है, जो संसार से तारे और उस पार ले जाये वह तप है, जो पापों से उबार दे वह तप है जो आत्मा को शीतल व पवित्र कर दे वह तप है और 'तप' को यदि हम उल्टा कर दे तो वह 'पत' हो जाता है। 'पत' यानि जो आत्मा का पतन करते वह पत है। पू. आचार्य महाराज कहतेहैं - तप करो अन्यथा पतन को प्राप्त हो जाओगे। पत यानि गिरना। जो पतन से बचाकर, पावन बनाये वह तप है।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं तप करो लेकिन समता के साथ क्योंकि-

समता तामस में जरा उलट पुलट का फेर ।

समता पावे सुख बढ़े तामस दुःख अंधेर ॥

तप समता के साथ किया जाता है तो आनंद को उत्पन्न करता है तथा समता के अभाव में तामसता उत्पन्न होती है तामसता के साथ किया गया तप पतन का कारण है। लौकिक प्रयोजनकी सिद्धि के लिए खेद खिन्न होकर, क्रोध में आकर की गई तपस्या तामसिक है। ऐसा तप व्यर्थ है व संसार का ही कारण है। रइधुई कवि उस तप धर्म की महिमा गाते हुए कह रहे हैं-

कामेन्द्रिय दमं सारं तपः कर्मारिनाशनम् ।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥ १ ॥

कामेन्द्रिय का दमन करने वाले, सारभूत और कर्मशत्रु का नाश करने वाले तप धर्म की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक बड़ी विभूति के साथ मैं उसकी पूजा करता हूँ।

गरभव पावेष्पिणु तच्च मुणेष्पिणु खंचिवि पंचिदिय समणु ।

णिव्वेउ पमंडिवि संगइ छंडिवि तउ किज्जइ साएवि वणु ॥ २ ॥

नर भव को पाकर तत्त्वों का चिंतन करना चाहिए, पदार्थों का चिंतन करते हुए हृदयंगम करना चाहिए, वैराग्य, निर्वेग भाव को धारण कर परिग्रह का त्याग कर वन में जाकर तप आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

करना चाहिए। परंतु कुछ लोग तप को कष्टकारी मानते हैं उन लोगों को समझाते हुए पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं-

ध्रुव सिद्धि तित्थयरो चउणाण जुदो करेइ तवयरणं ।

णाऊण ध्रुवं कुज्जा तवयरणं णाण जुत्तोवि ।। मोक्ष पाहुड/मू.६०

चाहे चार ज्ञान के धारी तीर्थंकर भी क्यों नहीं उन्हें भी तपश्चरण के बिना ध्रुव सिद्धि नहीं हुई उन्हें भी दीक्षा लेनी पड़ी, तपश्चरण से नियम से सिद्धि होती है।

तपोहीनो नरो ज्ञेयः क्षेत्र निर्मापितो यथा ।

इह लोके च रोगी स्याद् मुत्र दुर्गतिं ब्रजेत् ।। सु. रत्ना.७४

तप से हीन मनुष्य खेत की रक्षा के लिए बनाये गये पुरुष (बिजूका) के समान जानना चाहिए, जो इस लोक में रोगी होता है और परलोक में दुर्गति को प्राप्त होता है।

तं तउ जहि परिगहु छंडिज्जइ, तं तउ जहि मयणु जि खंडिज्जइ ।

तं तउ जहि पग्गत्तणु दीसइ, तं तउ जहि गिरिकंदरि णिवसइ ।। ३ ।।

तप वह है जहाँ परिग्रह का त्याग किया जाता है, काम का नाश किया जाता है, जहाँ नग्नता दिखाई देती है तथा गिरिकंदराओं में निवास किया जाता है।

तं तउ जहि उवसग्ग सहिज्जइ, तं तउ जहि रायाइं जिणिज्जइ ।

तं तउ जहि भिक्खइ भुंजिज्जइ, सावय गेह कालि णिवसिज्जइ ।। ४ ।।

तप वह है जहाँ उपसर्गों को सहन किया जाता है, तथा रागादि भावों को जीता जाता है, जहाँ भिक्षा वृत्तिपूर्वक भोजन किया जाता है वह तप है। तथा श्रावक के घर योग्य काल तक निवास किया जाता है वह तप है।

तं तउ जत्थ समिदि परिपालणु, तं तउ गुत्तित्तयहं णिहालणु ।

वं तउ जहि अप्पापरु बुज्झिउ, तं तउ जहि भव माणु जि उज्झिउ ।। ५ ।।

तप वह है जहाँ समितियों का पालन किया जाता है, तप वह है जहाँ तीन गुप्तियों की ओर सम्यक् ध्यान दिया जाता है, तप वह जहाँ अपने व दूसरे का विचार किया जाता है तथा पर्याय के अहंकार का त्याग किया जाता है।

तं तउ जहि ससरुव मुणिज्जइ, तं तउ जहि कम्महं गुण खिज्जइ ।

तं तउ जहि सुर भत्ति पयासइ, पवयणत्थ भवियणहं पभासइ ।। ६ ।।

तप वह है जहाँ अपने स्वरूप का मनन किया जाता है तथा कर्मों का नाश किया जाता है, जहाँ देवतागण अपनी भक्ति प्रकाशित करते हैं तथा जहाँ भव्य जीवों के लिए

प्रवचनार्थ (शास्त्रों के अर्थ) का कथन किया जाता है।

जेण तवें केवलु उप्पज्जइ, सासय सुक्खु णिच्च संपज्जइ।

तं तउ जहिं णिय रुव पयासइ, सासय परमसुक्खु जहिभासइ।। ७।।

तप वह है जिसके होने पर नियम से केवलज्ञान उत्पन्न होता है और नित्य शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है तप वह है जिससे आत्म स्वभाव प्रकाशित होता है तथा शाश्वत परमसुख जहाँ भासित होता है।

बारह विहु तउ वरु दुग्गइ परिहरु तं पूजिज्जइ थिरमणिणा।

मच्छरु मउ छंडिवि करणइं दंडिवि तं पि धरिज्जइ गउरविणा।। ८।।

यह 'उत्तम तप' बारह भेद वाला है। ६ अंतरंग व ६ बहिरंग तप। तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ में पू. आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं-

'अनशनावमौदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रस परित्याग विविक्त शैय्यासन कायक्लेसा बाह्यं तपः।। १९।। त.सू.

अनशन, अवमौदर्य (ऊनोदर), वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शैय्यासन, कायक्लेश ये ६ प्रकार के बाह्य तप हैं।

अनशन :- चारों प्रकार के आहारों का (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) नव कोटि से त्याग करना वास्तविकता में अनशन तप है। चारों प्रकार के आहारों के त्याग के साथ-साथ विषय व कषायों का भी त्याग होना चाहिए। कहा भी है-

कषाय विषयाहार त्यागो यत्र विधीयते।

उपवासः स विज्ञेयः शेषः लंघनकं विदुः।। का.अ.टी.

चारों प्रकार के आहारों के साथ-साथ जहाँ विषय व कषायों का भी त्याग होता है वह उपवास है। शेष सब लंघन है। उपवास के दिन रागवर्धक क्रियाओं तथा टी.वी. आदि देखने का त्याग करना चाहिए तथा चित्र को आत्म ध्यान में लगाना चाहिए। सेठ सुदर्शन, वज्रकुमार आदि रात्रि के समय जागरण करते हुए श्मशान में ध्यान करते थे। उपवास की व्युत्पत्ति देखे तो 'उप समीपे वासः इति उपवासः।' अर्थात् जिसमें अपनी आत्मा के समीप वास किया जाता है वह उपवास है। पू. आचार्य महाराज कहते हैं कि उपवास के दिन अपने आवश्यक कर्तव्यों स्वाध्याय, जाप, पूजा, तत्वचर्चा, भक्ति, ध्यान आदि में वृद्धि करना चाहिए तथा इच्छाओं का निरोध करना चाहिए।

'इच्छा निरोधः तपः'।। ध.पु.।।

अर्थात् इच्छाओं परीव लगाना ही वास्तविकता में तप है।

अवमौदर्य :- इसे ऊनोदर भी कहते हैं। अपनी भूख से कम भोजन करना ऊनोदर तप है इसके मुख्य दो भेद हैं- (१) जघन्य ऊनोदर तप (२) उत्कृष्ट ऊनोदर तप। अपनी भूख से १ चावल भी कम लेना जघन्य ऊनोदर तप है। तथा आहार में १ चावल मात्र ग्रहण करना उत्कृष्ट ऊनोदर है। बीच के मध्यम विभाग अनेक हो सकते हैं। जिसे आचार्यों ने ऊँनोदर तप कहा है वैद्यक शास्त्र व विज्ञान भी उसकी पुष्टि करता है। कहा है - कि यदि व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है तो उसे अपनी भूख से कुछ कम भोजन करना चाहिए। कहा भी है-

"Excess of food is the invitation for diseases"

आवश्यकता से अधिक खाना विभिन्न प्राकर की बीमारियों को आमंत्रण देना है। जीवन में सफलता पाने के तीन सूत्र कहे गये हैं-

(१) कम खाओ (२) गम खाओ (३) नम जाओ।

वृत्ति परिसंख्यान:- आहार को निकलते समय अटपटी प्रतिज्ञाएँ ग्रहण करना जैसे - १ बार के परोसे का नियम, हाथ में कोई श्रावक २ कलश, तीन कलश या पूजन की सामाग्री या फल आदि लेकर खड़ा हो तभी पड़गूगा आदि नियम पूर्वक आहार ग्रहण करना वृत्ति परिसंख्यान तप है।

रस परित्याग :- घी, दूध, दही, तेल, नमक, शक्कर इन छह रसों से किसी १ का २ का या छहों का कुछ दिन, १ दिन, महीने भर के लिए या आजीवन के लिए त्याग करना रस परित्याग तप है। यह रस परित्याग तप रसना इंद्रिय को जीतने के लिए किया जाता है।

विविक्त शैय्यासन :- जहाँ पर स्त्री, नपुंसक, बालक, पशु-पक्षी आदि का आवागमन न हो ऐसे शांत-एकांत स्थान पर लेटना, बैठना, ध्यान आदि करना विविक्त शैय्यासन तप कहलाता है।

काय क्लेश तप :- कंकड़, पत्थर आदि से युक्त भूमि पर बैठना, सोना विभिन्न प्रकार के कठिन-कठिन आसन लगाना अर्थात् ऐसी तपस्या करना जिससे शरीर को कष्ट हो वह काय-क्लेश तप कहलाता है। यह तप शरीर से ममत्व भाव को त्याग करने के लिए किया जाता है।

आभ्यन्तर तपों का वर्णन करते हुए पू. आचार्य महाराज कहते हैं-

‘प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥२०॥९/त.सू.॥
प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग व ध्यान के भेद से आभ्यन्तर तप ६ प्रकार का है।

प्रायश्चित्त :- व्रतों में किसी भी प्रकार दोष लग जाए, व्रत खंडित हो जाए, झूठ बुल जाए, चोरी हो जाए अर्थात् महाव्रतों में या समितियों में यानि २८ मूलगुणों में वाही किञ्चित भी दोष उत्पन्न हो तो तुरंत गुरु के समीप पहुँच कर निंदा, गर्हा पूर्वक प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिए। इस भव के कर्मों को इसी भव में खपाने का श्रेष्ठ उपाय है। प्रायश्चित्त लेने से न केवल व्रतों की अपितु चित्त की शुद्धि भी हो जाती है। निरंतर प्रायश्चित्त लेने वाला भव्य होता है तथा शीघ्र मुक्ति को पाता है।

विनय :- तप वृद्ध, ज्ञान वृद्ध आदि श्रेष्ठ साधकों की मन, वचन, काय से विनय रखना। गुरुजनों के पीछे चलना, नीचे बैठना तथा उन्हें उच्चासन देना, सम्मान देना, आदर करना तथा १ समय भी यदि कोई पूर्व दीक्षित है तो उनका भी आदर करना यह विनय तप कहलाता है। मुख्य रूप से विनय के चार भेद कह हैं जो कि मोक्षमार्ग में प्रयोजन भूत है-

(१) ज्ञान विनय (२) दर्शन विनय (३) चारित्र विनय (४) उपचार विनय जिस पवित्र रत्नत्रय को धारण किया है उसकी वृद्धि करना विशुद्धि अंशों को बढ़ाते रहना ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप विनय है। इसके अतिरिक्त जो गुरुजन आदि की विनय की जाती है वह उपचार विनय है।

वैय्यावृत्ति :- अपने साधर्मि की रत्नत्रय की साधना में उत्पन्न हुए विघ्नों को दूर करना वैय्यावृत्ति है।

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसङ्घसाधु मनोज्ञानाम् ॥९/त.सू.

ये दस वैय्यावृत्ति के स्थान कहे गये हैं। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, सङ्घ, साधु, मनोज्ञ इनकी निरंतर सेवा, वैय्यावृत्ति करते रहना चाहिए। जो रत्नत्रयधारियों की सेवा में सतत संलग्न रहता है वह एक दिन तीर्थंकर जैसी महान पुण्य प्रकृति का बंध करता है। इसके अलावा लौकिकता में भी कहा जाता है "One who serves others one day he will also serve by haven" जो निरंतर दूसरों की सेवा करता है वह भी एक दिन सेवा को प्राप्त होता है।

सेवा करके पुण्य कमाओ, सेवा ही निज गहना ।

सेवा करने से ही मिलता, मुक्ति पथ का मेवा ।।

स्वाध्याय :- आत्मकल्याण/आत्म हित का प्रयोजन लेकर जो शास्त्रों का पठन, वाचना आदि किया जाता है वह स्वाध्याय तप है पू. आचार्य उमास्वामी महाराज स्वाध्याय तप के भेद कहते हैं-

‘वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशः ।।’त.सू.९

वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय व धर्मोपदेश ये ५ प्रकार का स्वाध्याय होता है। वाचना क माध्यम से या पृच्छना करके, बार-बार भावना भाकर, कंठस्थ करके या धर्मोपदेश देकर स्वाध्याय किया जा सकता है।

“स्वाध्यायः परमं तपः” ।

पंचम काल में मन रूपी मर्कट को वश में करने के लिए स्वाध्याय को ही परम तप कहा गया है।

व्युत्सर्ग :- शरीर से ममत्व के त्याग करने को व्युत्सर्ग तप कहते हैं। जब साधक जन कार्योत्सर्ग पूर्वक खड़े होते हैं तो शीत - ऊष्ण की बाधा, डांस-मच्छर द्वारा उपसर्ग किया जाता है फिर भी वे समता रखते हैं। यही व्युत्सर्ग तप है।

ध्यान :- आत्मा की साधना करने वाले साधक अहर्निश आत्म तत्व के चिंतन में चित्त को एकाग्र करते हैं वही ध्यान तप कहलाता है। मुनि जन अपने चित्त को एक ही पदार्थ के चिंतन में लगा देते हैं तथा ध्यान के द्वारा कर्मों की संवर, निर्जरा व क्षय करते हैं। श्री उमास्वामी पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं-

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंता निरोधो ध्यान मान्तर्मुहूर्तात् ।। २७ ।। ९/त.सू. ।।

उत्तम संहनन धारी के द्वारा एकाग्र चिंता का निरोध ध्यान कहलाता है जिसमें अंतर्मुहूर्त का समय लगता है।

यह ‘तप धर्म’ दुर्गति का परिहार करने वाला है प्रत्येक भव्य प्राणियों को चाहिए कि वे स्थिर मन होकर उसका आदर करें तथा गौरव के साथ मद-मात्सर्य का त्याग कर, पाँचों इंद्रियों का दमन कर उसे धारण करें और अपने आत्मा का कल्याण करें।

“बोलिए महावीर भगवान की जय”

“त्याग ही जीवन का श्रृंगार”

संयतस्य योग्यं ज्ञानादि दानं त्यागः । स.सि.९/६/४१३/१

संयत के योग्य ज्ञानादि का दान करना त्याग है ।

णिव्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सब्बदब्बेसु ।

जो तस्स हवेच्चागो, इदि भणिदं जिणवरिं देहि ।। बा.अणु.७८

जिनेन्द्र देव ने कहा है कि जो जीव सारे पर द्रव्यों के मोह को छोड़कर संसार देह और भोगों से उदासीन परिणाम रखता है उसके त्याग धर्म होता है ।

परिग्रहस्य चेतनाचेतन लक्षणस्य निवृत्तित्याग इति निश्चीयते ।

सचेतन और अचेतन परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते हैं ।

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा, दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ।

चक्षु श्रोत्रे च जीर्यत, तष्णैका तरुणायते ।। पं.तं.५/१४

बुढ़ापा आने से बाल सफेद हो जाते हैं, दांत भी हिलने लगते हैं, आँख कान भी जीर्ण हो जाते हैं किन्तु एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है ।

दाणं पूजा मुखं सावय धम्मे ण सावया तेण विणा । र.सा.११

सुपात्र में चार प्रकार का दान देना और देव शास्त्र गुरु की पूजा करना श्रावक का मुख्य धर्म है इसके बिना वह श्रावक नहीं है ।

व्याख्या यत् क्रियते श्रुतस्य यतये यद्दीयते पुस्तकं, स्थानं संयमसाधनादि कमपि प्रीत्या सदाचारिणा ।

सदाचारी पुरुष के द्वारा मुनि के लिए जो प्रेमपूर्वक आगम का व्याख्यान किया जाता है, पुस्तक दी जाती है, तथा संयम की साधनभूत पीछी आदि भी दी जाती है उसे त्याग धर्म कहा जाता है ।

जो मूढ़बुद्धि मनुष्य परिग्रह का त्याग किये बिना मोक्ष की इच्छा करता है वह आकाश के पुष्पों से बन्ध्यासुत का उत्तम सेहरा बनाता है ।

बंधुओं ! आज हम दस धर्म की आठवीं पायरी उत्तम त्याग धर्म को समझने का

प्रयत्न करेंगे। त्याग धर्म की व्याख्या करते हुए पू. आचार्य महाराज कहते हैं-

जो चयदि मिट्टु भोज्जं उवयरणं राय दोस संजणयं ।

वसदि ममत्त हेदुं चाय गुणो सो हवे तस्स ।। का. अनु.४०१

जो मिष्ट भोजन को, राग-द्वेष को उत्पन्न करने वाले उपकरण को तथा ममत्व भाव के उत्पन्न होने में निमित्त वसति को छोड़ देता है उस मुनि के त्याग धर्म होता है।

“पर प्रीति करणातिसर्जनं त्यागः ।६। आहारो क दत्तः पात्राय तस्मिन्नहनि तत्प्रीति हेतुर्भवति, अभयादान मुपपादितमेक भवव्यसननोदनम, सम्यग्ज्ञान दानं पुनः अनेक भव शत सहस्रत्र दुःखोत्तरण कारणम् । अत एतत्त्रिविधं यथाविधि प्रतिपद्यमानं त्याग व्यपदेश भागभवति ।“

पर की प्रीति के लिये अपनी वस्तु को देना त्याग है। आहार देने से पात्र को उस दिन प्रीति होती है। अभय दान से उस भव का दुःख छूटता है, अतः पात्र को संतोष होता है। ज्ञान दान तो अनेक सहस्रत्र भवों के दुःख को छुटकारा दिलाने वाला है। ये तीनों दान यथाविधि दिये गये त्याग कहलाते हैं।

परानुग्रह बुद्ध्या स्वस्यातिसर्जनं दानम् । स.सि./६/१२/३३०/१४

दूसरे का उपकार हो इस बुद्धि से अपनी वस्तु का अर्पण करना दान है। त्याग को अच्छी तरह से जानने के लिए उसके प्रतिरोधी परिग्रह का समझेंगे। पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज कहते हैं :-

परिग्रह महाभारं सकल दुःख दानाकरं,

असंख्य भव कारणं मुनिजनैर्महानिन्दितम् ।

अनेक गुरु कष्टजं भयबधादिदुःखास्पदं,

त्यज त्वमपि सर्वदा सकल मोक्ष सौख्याय वै ।। १४२ सु.र. ।।

जो समस्त दुःखों को देने की खान है, असंख्य भवों का कारण है मुनिजनों के द्वारा अत्यंत निन्दित है, जो अनेक प्रकार के बहुत भारी कष्टों से उत्पन्न होता है, भय और वध आदि दुःखों का स्थान है ऐसे परिग्रह रूप महाभार को तू भी संपूर्ण मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए निश्चय से सदा के लिए त्याग कर।

‘त्याग-धर्म’ का जितना उत्कृष्ट स्वरूप हमें जैन-धर्म में देखने को मिलता है उतना अन्य दर्शनों में नहीं मिलता। दिगंबर जैन मुनि वस्त्र, कुटुम्ब-परिवार व संपूर्ण परिग्रह के त्यागी होते हैं वे कल की तो क्या, पल की भी चिंता नहीं करते। जैन दर्शन के

त्याग को देखकर अन्य दर्शन नतमस्तक हो जाते हैं। त्याग ही जीवन का श्रृंगार है, जीवन का उपहार और जीवन का सार है। मानवता की कीमत त्याग से होती है। संग्रह से नहीं व्यक्ति त्याग से महान बनता है, त्याग से ही व्यक्ति हल्का होता है, उन्नति-उत्थान करता है। जब तक नाव में वजन होगा, तब तक डूबती जाती है और जितना अधिक वजन होगा, नाव उतनी ही नीचे जायेगी। जितनी हल्की होगी उतनी ऊपर आयेगी। त्याग डुबाता नहीं, उबारता है, हम जितना त्याग करते हैं उतना ही ऊपर उठते हैं। पतंग हल्की होती है इसलिए आकाश को छू लेती है व्यक्ति आरंभ व परिग्रह से जितना हल्का होता जायेगा उतना ही ऊपर उठेगा, जो त्याग करता है वह स्वर्ग का देव होता है। जो संग्रह करता है वह नरक जाता है।

तत्त्वार्थ सूत्र में पू. आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं-

“बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।”

अर्थात् बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह से नरकायु का आस्त्रव होता है।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं कहाँ तक व कितना संग्रह करोगे तुम्हारे साथ कुछ नहीं जायेगा, एक कौड़ी भी साथ नहीं जायेगी।

सम्राट सिकन्दर ने विभिन्न-विभिन्न देशों में, राष्ट्रों में अपना आधिपत्य जमाया, जब मृत्यु बेला आयी तो सम्राट ने दिगंबर कल्याण नामक मुनि के चरणों में प्रार्थना विनेदन की - “हे भगवन्! मृत्यु की बेला में क्या करना चाहिए?” मुनि महाराज बोले- यही चिंतन करो कि न मेरे साथ कोई आया था, न मेरे साथ कोई जायेगा। न मेरा कुछ है, न मेरा रहेगा। समाधी के समय ऐसा चिंतन कर साधक सफल हो जाता है। सम्राट सिकन्दर विद्वान थे वे बोले-

इस धरा का इस धरा पर सब धरा रह जायेगा।

बाँध कर मुट्टी तू आया, कर पसारे जायेगा।

जब बच्चा जन्म लेता है तो मुट्टी बंधी होती है तथा जब व्यक्ति मरता है तो हाथ खुला रहता है। वह मंत्रियों और सामन्तों को बुलाकर आदेश देता है। हे सामंतो! आज तक तुमने मेरी सेवा की अब अंतिम बेला में मेरी अंतिम आज्ञा का पालन करना है। मंत्री कहते हैं- हुकुम कीजिए सम्राट! मैं सेवा में सदैव तत्पर हूँ। सम्राट ने कहा- जब मेरी मृत्यु हो जाए तो मेरी मृत्यु के पश्चात् जब मेरे शव को अर्थी पर रखो तो मेरे दोनों हाथ अर्थी से बाहर लटका देना। सामंतों ने कहा सम्राट! हम आपकी आज्ञा का शब्दशः

पालन करेंगे। परंतु हम दुनिया को क्या जवाब देंगे कि आपने ऐसा क्यों किया ? तब सम्राट कहते हैं - आप उनसे कहना कि जब सिकन्दर दुनिया से चल बसा तो उसके दोनों हाथ खाली थे उसके पास अपार धन संपदा थी, अनेकों सैनाएं थीं अनेक राजा चरणों में नतमस्तक थे परंतु जब सिकन्दर इस धरा से गया तो उसके दोनों हाथ खाली थे। कल्याण मुनि का उपदेश अजर-अमर रहे, मेरी तरह विश्व के समस्त प्राणी उस उपदेश को जीवन में उतार कर अपना कल्याण करें।

प्रायः व्यक्ति हाय-हाय करता हुआ अपना सारा जीवन गंवा देता है। पैसा-पैसा ही करता रहता है। परंतु एक दार्शनिक ने कहा है-

Money-money money, money is sweet honey but without life no money no honey.

व्यक्ति पैसा-पैसा चिल्लाता है पैसे से ही सुख मानता है परंतु वह कब तक है जब तक जीवन है। जीवन ही नहीं रहेगा तो पैसे से क्या प्रयोजन।

भगवान महावीर स्वामी कहते हैं - पैसा ही सुख नहीं है, धर्म से सुख है। यदि पैसे से सुख मिलता तो धनवान सारा सुख खरीद लेते और गरीब को दुःख ही मिलता लेकिन ऐसा संभव नहीं है क्योंकि सुख पैसे से नहीं धर्म से प्राप्त होता है और वह धर्म है 'त्याग-धर्म' वह त्याग भी दो प्रकार से होता है - (१) बाहर से (२) अंदर से बाहर का त्याग तो फिर भी आसान है परंतु अंतरंग त्याग की भी आवश्यकता है। मूर्च्छा, आसक्ति, अहंकार, मोह-ममता का भी त्याग होना चाहिए तभी जीवन में सच्चा 'त्याग-धर्म' आ सकता है। और त्याग के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता। कहा भी है-

यः परिग्रहमत्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति मूढधीः।

खपुष्पैः कुरुते सारं स बन्ध्यासुतशेखरम् ॥ १३९ ॥

जो मूढ़ बुद्धि मनुष्य परिग्रह का त्याग किये बिना मोक्ष की इच्छा करता है वह आकाश के पुष्पों से बन्ध्यासुत का उत्तम सेहरा बनाता है।

कुछ व्यक्ति कुतर्क करते हैं कि मैं परिग्रह संचय इसलिए करना चाहता हूँ ताकि दान दे सकूँ। एक बार एक सज्जन मेरे पास आये और बोले - महाराज! मुझे आशीर्वाद दो मेरा व्यापार खूब चले मैंने कहा - परिग्रह संचय का आशीर्वाद हम नहीं देते क्योंकि हमारा अपरिग्रह महाव्रत है नव कोटि से परिग्रह का त्याग है। तो वे सज्जन बड़े गर्व के साथ बोले - महाराज! यह आशीर्वाद इसलिए मांग रहा हूँ ताकि मंदिर बनवा सकूँ साधु-संतों की सेवा कर सकूँ। तो मैंने भी उन्हीं के अंदाज में कहा चलिए मेरे साथ मैं आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

आपको पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज के पास ले चलता हूँ जरा ध्यान से सुनना वे क्या आशीर्वाद दे रहे हैं। हाँ-हाँ जरूर चलूंगा क्योंकि बड़े-बड़े आचार्यों का आशीर्वाद तो मुझे पाना ही है- श्री पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज अपने इष्टोपदेश ग्रंथ में कह रहे हैं-

त्यागाय श्रेयसे वित्त, मवित्तः संचिनोति यः

स्वशरीरं स प केन, स्नास्यामीति विलंपति ॥ १६ इष्टो. ॥

जो धन से रहित (गरीब) त्याग/दान करने के लिए धन का संचय करना श्रेष्ठ मानता है, वह “स्नान करूंगा” इस विचार से अपने शरीर को कीचड़ से लीपता है।

अर्थात् दान दूंगा इसलिए धन संग्रह की भावना उचित नहीं है। अपितु तुम्हारे पास जो है उसमें से कुछ त्याग करना श्रेष्ठ दान है। लोभ में आकर व्यक्ति कमाता तो बहुत है परंतु उसके त्याग के भाव नहीं बन पाते, भले ही लुट जाये, चोरी चला जाए पर दान नहीं दे पाता तो पू. आचार्य भगवन् समझाते हैं कि धर्म क्षेत्र में धन का दान देने से धन बढ़ता ही है घटता नहीं। यहाँ तो सब कुछ ब्याज सहित मिलता है कहा भी जाता है-

तू एक पैसा देगा, वो १० लाख देंगे।

तुम प्रभु की सुनो, वो तुम्हारी सुनेगा ॥

यदि Bank में कोई हजार रुपया जमा करता है तो २-४ रुपये ब्याज में मिल जाता है। और यदि कोई १ लाख रुपये जमा करता है तो उसे ५००-६०० रुपये मिलता है अब आप ही बतायें घाटा हुआ कि फायदा। Bank में रहने से फायदा ही होता है, जब लौकिक Bank की यह विशेषता है तो पारमार्थिक Bank का तो कहना ही क्या है यदि आज किसी गरीब को भोजन कराओगे तो आप नियम से कभी भूखे नहीं रहोगे। जैसे-जैसे त्याग करोगे तो संपदा घटेगी नहीं अपितु गुणित रूप से बढ़ेगी।

“यदि कुयें से पानी न निकालो तो वह सड़ जायेगा” और जितना-जितना पानी निकालोगे उतना-उतना शुद्ध होता जाएगा व पानी का स्तर बना रहेगा कभी घटेगा नहीं। ठीक इसी प्रकार जितना-जितना त्याग करोगे कमी नहीं आयेगी अपितु वृद्धि ही होती जायेगी। वस्तु के त्याग में स्व व पर दोनों का हित छिपा रहता है। कहा भी जाता है-

अनुग्रहार्थं स्वस्याति सर्गो दानम् ॥ त.सू.७/३८ ॥

स्व व पर के हित के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। अब दान योग्य या त्याग योग्य वस्तु क्या है? तो परिग्रह के दो विभाग बनाये गये - (१) बहिरंग परिग्रह (२) अंतरंग परिग्रह।

(१) बहिरंग परिग्रहः- क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भाण्ड ये दस भेद हैं।

(२) आभ्यन्तर परिग्रहः- हास्यादि ९ कषाय, ४ क्रोध, मान, माया, लोभ १, मिथ्यात्व - १४

बाहर में दस प्रकार के तथा अंतरंग में कषाय व मिथ्यात्व रूप परिग्रह के त्याग करना वास्तविक त्याग कहलाता है। कषायों से ही बुरे संस्कारों का जन्म होता है। इन बुरे संस्कारों का त्याग ही 'उत्तम त्याग धर्म' है। गृहस्थ परिग्रह का परिणाम बनाता है तथा साधु पूर्ण रूपेण त्याग करते हैं। जब यह 'त्याग' स्व-पर हित की भावना से किया जाता है तब वह दान संज्ञा को प्राप्त होता है।

कुछ लोग दान देते हैं तो छपा-छपाकर देते हैं परंतु पू. आचार्य महाराज कहते हैं दान छपा कर नहीं अपितु छिपा कर दिया जाता है ताकि अहंकार उत्पन्न न हो। धर्मायतनों में जितने भी झगड़े-झंझट होते हैं वे धन के कारण ही होते हैं। व्यक्ति की प्रायः यह मानसिकता होती है यदि पटिये पर हमारा नाम लिखा जायेगा तो १ लाख रूपये दान दूंगा अन्यथा १००० ही दूंगा इसका मतलब है कि ११००० का दान आपने नाम के लिए दिया। फोटो की बात आ जाए तो ३ लाख दे सकते हैं इसका मतलब है फोटो को खरीद रहे हैं परमार्थ से इस प्रकार दिया गया धुन दान संज्ञा को प्राप्त नहीं हो पायेगा। व्यक्ति बिना सोचे समझे भिखारी को पैसे दे देते हैं वह दान तो दूर आपकी करुणा भी नहीं कहलायेगी। क्योंकि हो सकता है वह आपके दिये पैसे से शराब पियेगा। मांस/अण्डे खायेगा। तो उस पाप के भागीदार आप कहलायेंगे क्योंकि आपने पैसे दिये हैं। १०% पाप आपको लगेगा। और वही दान यदि आप सुपात्रों को देते हैं तो उनकी तपस्या का दशांश पुण्य लाभ आपको मिलेगा। पू. आचार्य भगवन् कहते हैं। पानी की बूंद तो वही है एक बूंद गन्ने में जाती है तो इक्षु रस में परिणत हो जाती है, सीप में जाती है तो मोती बन जाती है वही पानी की बूंद आम के वृक्ष में जाये तो मिठास में परिणत होती है वही नीम के वृक्ष में जाये तो कड़वाहट पैदा करती है वही बूंद सर्प के मुख में जाये तो विष में परिणत हो जाती है तथा नाली के गंदे पानी में गिर जाये तो दुर्गंधित हो जाती है। उसी प्रकार पात्र दान सुपात्र को दिया जाए तो पुण्य का कारण है और अपात्र या कुपात्र को दिया जाए तो पाप का कारण है।

अतः अच्छी तरह से सोच समझकर विवेक, ज्ञान के साथ दें। रइधुई कवि त्याग धर्म की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

त्यक्तसंगं मुदात्यन्तं त्यागं सर्वसुखाकरम्।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥ १ ॥

जो परिग्रह के त्याग से प्राप्त होता है तथा सब प्रकार के सुखों का आकर है, उस 'त्याग धर्म' की प्राप्ति के लिए आनंद और श्रेष्ठ भक्ति पूर्वक मैं पूजा करता हूँ।

चाउ वि धम्मंगउ तं जि अभंगउ णियसत्तिए भत्तिए जणहु।

पत्तहं सुपवित्तहं तव गुण जुत्तहं परगइ संबलु तं मुणहु ॥ २ ॥

त्याग भी एक धर्म का अंग है, वह नियम से अभंग है। तप गुण से युक्त अत्यन्त पवित्र पात्र के लिए अपनी शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक दान देकर उस त्याग धर्म का पालन करना चाहिए। पूजन की एक पंक्ति में कहा है-

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।

आहार दान, औषध दान, शास्त्र दान और अभय दान के भेद से दान के चार भेद हैं। सर्वार्थ सिद्धि ग्रंथ में पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज दान के भेद बताते हुए कहा है-

“त्यागो दानम्। तत्रिविधम् - आहार दानमभयदानं ज्ञान दानं चेति।”

त्याग दान है। वह तीन प्रकार का है आहार दान, अभय दान और ज्ञान दान। मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका ये चतुर्विध संघ कहलाता है मुनि-उत्तम पात्र, आर्यिका, ऐलक मध्यम पात्र अत्रती सम्यग्दृष्टि - जघन्य पात्र है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को यथाशक्ति आहार, औषध, शास्त्र या अभय देना दान कहलाता है। पू. आचार्य कुंदकुंद महाराज अपने रयणसार ग्रंथ में कहते हैं जो व्यक्ति मुनियों को दान देकर शेषान्न को खाता है वह परंपरा से मुक्ति को पाता है-

जो मुणिभक्तावसेसं भुंजइसी भुंजए जिणवद्धिदुं।

संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाण वर सोक्खं ॥।

जो भव्य जीव मुनीश्वरों को आहारदान देने के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझ कर सेवन करता है वह संसार के सारभूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष सुख को पाता है।

दान देना धर्म का अंग है। जो दान नहीं देता वह धर्म से विकलांग है तथा जो अहर्निश चार संघ का चार प्रकार का दान देता है वह सांगोपांग है। दान या त्याग अन्य गति के लिए पाथेय के समान है। क्योंकि जो दान दिया है वह आपके पुण्य के खाते में जमा हो जाता है और परभव में साथ जाता है। दान ही परम धर्म है इस बात को बताते हुए कहते हैं-

नानागृहव्यति करार्जित पाप पुञ्जैः खञ्जीकृतानि गृहिणो न तथा व्रतानि ।

उच्चैः फलं विदधतीह यथैकदापि प्रीत्याति शुद्ध मनसा कृत पात्रदानम् ।।

लोक में अत्यन्त विशुद्ध मनवाले गृहस्थ के द्वारा प्रीतिपूर्वक पात्र के लिए एक बार भी किया गया दान जैसे उन्नत फल को करता है वैसे फल को गृह की अनेक झंझटों से उत्पन्न हुए पाप समूहों के द्वारा कुबडें अर्थात् शक्ति हीन किये गये ग्रहस्थ के व्रत नहीं करते हैं।

चाए अवगुण गणु जि उहट्टइ, चाए णिम्मल कित्ति पवट्टइ ।

चाए वयरिय पणमइ पाए, चाए भोगभूमि सुह जाए ।। ३ ।।

त्याग से अवगुण नष्ट हो जाते हैं तथा गुण प्रकट हो जाते हैं निर्मल कीर्ति का विस्तार होता है। त्याग से बैरी व्यक्ति भी चरणों में झुक जाते हैं। रावण को भी बलि मुनि के सामने सिर झुकाना पड़ा। त्याग से ही भोगभूमि के सुख मिलते हैं। उत्तम पात्र को दान देने से उत्तम भोग भूमि, मध्यम पात्र को दान देने से मध्यम भोग भूमि व जघन्य पात्र को दान देने से जघन्य भोग भूमि की प्राप्ति होती है।

चाए विहिज्जइ णिच्च वि विणए, सुहवयणइं भासेप्पिणु पणए ।

अभयदाणु दिज्जइ पहिलारउ, जिमि णासइ परभव दुहयारउ ।। ४ ।।

प्रेम करके और प्रेम पूर्वक शुभ वचन बोलकर सदा नियमपूर्वक त्याग करना चाहिए। यदि आपने मुनि महाराज का पड़गाहन तो किया परंतु विवेक विनय का ध्यान नहीं रखा तो मुनि महाराज वापस लौट जायेंगे। एक बार एक महिला ने मुनि महाराज का पड़गाहन किया परंतु बच्चे से कुछ गलती हो गई तो आवेग में वह उसे अपशब्द, कटु-वचन कहने लगी। फिर क्या था महाराज ने उठायी पिच्छी कमण्डल और चल लिये। अरे-अरे! क्या हुआ? महाराज क्यों चले गये? तो आपने विनय का ध्यान नहीं रखा, शुभ वचन नहीं बोले सो महाराज को अंतराय कर लौटना पड़ा। इसलिए कहा है त्याग व दान तो करो परंतु विनय का ध्यान रखों।

चारों दानों में अभय दान को श्रेष्ठ कहा है। अभय दान देने से निर्भयता आती है। अभयदान देने वाले के पास जन्मजात बैरी भी आकर बैठ जाते हैं। और परभव संबंधी दुःखों का नाश होता है।

सत्थदाणु वीजउ पुण किज्जइ, णिम्मल णाणु जेण पाविज्जइ ।

ओसहु दिज्जए रोय विणासणु, कह वि ण पेच्छइ वाहि पयासणु ।। ५ ।।

दूसरा शास्त्रदान भी करना चाहिए जिससे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है। रोगों का नाश

करने वाला औषधिदान भी देना चाहिए, जिससे संपूर्ण व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

आहारं धण रिद्धि पवट्टइ, चउविहु चाउ जि एहु पवट्टइ ।

अहवा दुट्ट वियप्पहं चाएं, चाउ जि एहु मुणहु समवाएं ॥ ६ ॥

आहारदान से धन व ऋद्धियों की प्राप्ति होती है। अकृतपुण्य की माँ ने अक्षीण महानस ऋद्धि धारी मुनि को आहार दिया जिससे आहार रूप खीर अक्षय हो गई थी। वह 'दान-धर्म' सनातन काल से चला आ रहा है। अथवा दुष्ट विकल्पों का त्याग करने से त्यागधर्म होता है। समुच्चय रूप से इसे भी त्याग धर्म मानो।

दुहियहं दिज्जइ दाणु किज्जइ माणु जि गुणियणहं ।

दय भावियइ अभंग दंसणु चिंतिज्जइ मणहं ॥ ७ ॥

दुःखी प्राणीयों को देखकर दान देना चाहिए। परंतु यह पात्र दान नहीं करुणा दान कहलायेगा। गुणीजनों को श्रद्धा, भक्ति व सम्मान के साथ दान देना चाहिए। एक मात्र दया की भावना रखनी चाहिए और मन से सम्यग्दर्शन का चिंतन करना चाहिए।

पू. आचार्य गुरुवर विमल सागर जी महाराज कहा करते थे-

“भुक्ति मात्र प्रदानेन का परीक्षा तपस्विनः” ।

भुक्ति मात्र (भोजन मात्र) देने के लिए तपस्वियों की क्या परीक्षा करना। निर्ग्रंथ लिंग के धारी, २८ मूलगुणों का पालन करने वाले संतों को उनके रत्नत्रय में वृद्धि हेतु नवधा भक्ति से आहार देना चाहिए।

बंधुओं! त्याग ही जीवन का सार है, त्याग ही जीवन का श्रृंगार है, त्याग से सजा लेता है जो जीवन को अपने वही तो त्याग का सच्चा उपहार है। अतः आप सभी अपने जीवन में 'त्याग धर्म' को अंगीकार करें व आत्मोन्नति का पथ प्रशस्त करें।

“ बोलिए नमि नाथ भगवान की जय ”



“न किञ्चनः इति आकिञ्चनः”

मुर्च्छा परिग्रहः/त.सू.७/१७

मुर्च्छा भाव को परिग्रह कहते हैं।

संगात्कामस्ततः क्रोधस्तस्माद्धिसा तथा शुभम्।

तेन श्वाभ्री गतिस्तस्यां दुःखं वाचामगोचरम् ॥ ज्ञा. ११।१२।१७८

परिग्रह से काम होता है, काम से क्रोध, क्रोध से हिंसा, हिंसा से पाप और पाप से नरक गति होती है उस नरक गति में वचनों के अगोचर अति दुख होता है। इस प्रकार दुःख का मूल परिग्रह है।

जो लोहं णिहणित्ता संतो रसायणेण संतुट्ठो।

णिहणदि तिण्हा दुट्ठा मण्णंतो विणस्सरं सब्बं ॥

जो परिमाणं कुब्बदि धण धण्ण सुवण्ण रिक्त्तमाईणं।

उवओगं जाणित्ता अणुब्बदं पंचमं तस्स ॥ का.अनु.३३९-३४०

जो लोभ कषाय को कम करके, संतोष रूपी रसायन से संतुष्ट होता हुआ, सबको विनश्वर जानकर दुष्ट तृष्णा का घात करता है। और अपनी अवस्थाओं को जानकर धन, धान्य सुवर्ण और क्षेत्र वगैरह का परिमाण करता है उसके पाचवाँ अणुव्रत होता है।

मोत्तूण वत्थमेत्तं परिग्गहं जो विवज्जए सेसं।

तत्थ वि मुच्छं ण करेइ जाणइ सो सावओ णवमो ॥ वसु.श्रा.२९९

जो वस्त्र मात्र परिग्रह को रखकर शेष सब परिग्रह को छोड़ देता है और स्वीकृत वस्त्र मात्र परिग्रह में भी मूर्च्छा नहीं करता, उसे ९ वाँ श्रावक जाने।

क्षेत्र वास्तु हिरण्य सुवर्ण धनधान्य दासी दास कुप्य प्रमाणाति क्रमाः। त.सू.७/२९

क्षेत्र और वास्तु के, हिरण्य और सुवर्ण के, धन और धान्य के, दास और दासी के तथा कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये परिग्रह परिमाण व्रत के अतिचार है।

जीवणिब्द्धाऽब्द्धा परिग्गहा जीव संभवाचेव।

तेसिं सक्कच्चाणो इयरम्मि यणिम्म मोऽसंगो। मूला.

जीव से संबंधित तथा असंबंधित और जीव से उत्पन्न हुए ऐसे ये तीन प्रकार के परिग्रह हैं इनका शक्ति से त्याग करना और इतर परिग्रह में निर्मम होना असंग अर्थात् अपरिग्रह महाव्रत है।

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्व मुत्सृज्य निर्ममत्वरतः ।

स्वस्थः संतोषपरः परिचित परिग्रहाद्विरतः ॥ रत्ना.श्रा./४५

जो बाह्य दस प्रकार के परिग्रहों से ममता को छोड़कर, निर्मोही होता हुआ स्वात्मस्थ और परिग्रह की चाह से रहित होता है वह समस्त परिग्रह से रहित परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी है।

धन्य धान्यादि ग्रंथ परिमाय ततोऽधिकेषु निस्पृहता ।

परिमित परिग्रहःस्या दिच्छा परिमाण नामाऽपि ॥ रत्ना.श्रा./४६

क्षेत्र, वास्तु, धन-धान्य आदि दसों परिग्रह का परिमाण रख कर उससे अधिक में इच्छा नहीं रखना परिग्रह परिमाणानुव्रत कहलाता है।

मनोज्ञा ऽ मनोज्ञेन्द्रिय विषय रागद्वेष वर्जनानि पंच । त.सू.७/८

पांच इन्द्रियों के इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थों में राग-द्वेष नहीं करना ये अपरिग्रह व्रत की ५ भावना है।

अति वाहनाति संग्रह विस्मय लोभाति भार वहनानि ।

परिमित परिग्रहस्य च विक्षेपाःपंच लक्ष्यन्ते ॥ रत्न.श्रा.६२

अधिक वाहन रखना, अति संग्रह करना, दूसरों का वैभव देखकर अति विस्मय करना, तीव्र लोभ करना और क्षमता से अधिक भार लादना ये परिग्रह परिमाणानुव्रत के अतिचार हैं।

सव्व गंथ विमुक्को, सीईभूओ पसंत चित्तोअ ।

जं पावइ मुत्ति सुहं न चक्कवट्टी वितं लहई ॥ स.सु.

सम्पूर्ण परिग्रह से रहित, शीतीभूत, प्रसन्न चित्त, श्रमण जैसा मुक्ति सुख को पाता है वैसा सुख चक्रवर्ती को भी नहीं मिलता है।

आकिंचन्य धर्म इन्द्रिय रूपी वन में फैलने वाले मन को आवुंचित करता है। देह से स्नेह का त्याग तथा भव सुख से विरक्ति के भाव इस 'उत्तम-आकिंचन्य धर्म से ही होते हैं। इस आकिंचन्य धर्म के प्रभाव से ही तीर्थंकर मोक्ष रूपी नगरी को प्राप्त हुए हैं। तथा इसी के कारण काम-विकार से रहित ऋषिवर सदा वंदनीय होते हैं।

बंधुओं! आज हम पर्यूषण पर्व की नवमी कक्षा में प्रवेश करेंगे। जिसका नाम है “उत्तम आकिञ्चन्य” धर्म “न किञ्चनः इति आकिञ्चनः” अर्थात् जहाँ मैं-मेरा, तू-तेरा के भाव समाप्त हो जाते हैं, अहंकार और ममकार का विसर्जन हो जाता है और जहाँ योगीजन इस चिंतन में उतर जाते हैं कि संसार में मेरा कुछ भी नहीं। वही ‘आकिञ्चन्य’ है। पू. आचार्य कुंदकुंद भगवन् समयसार में कहते हैं - कि

उत्तम संयम के धारी निग्रंथ साधक जन जब आत्म साधना में उतरते हैं तो चिंतन करते हैं कि मेरा कुछ भी नहीं है। यह एक अकाट्य सत्य है कि “मेरा कुछ भी नहीं” अन्य शास्त्रों में भी आचार्यों ने आकिञ्चन्य धर्म के स्वरूप को बताया है यथा-

लोभ कषायोदया द्विषयेषु सङ्गः परिग्रहः। स.सि./४/२१/२५२/५

लोभ कषाय के उदय से विषयों के संग को परिग्रह कहते हैं।

ममेदं बुद्धि लक्षणः परिग्रहः। स.सि.६/१५/३३३/१०

यह वस्तु मेरी है इस प्रकार का संकल्प रखना परिग्रह है।

रागादयः पुनः कर्मोदय तन्त्रा इति अनात्मस्वभावत्वाद् धेयाः।

ततस्तेषु सङ्कल्पः परिग्रह इति युज्यते। स.सि.७/१७/३५५/१०

रागादि तो कर्मों के उदय से होते हैं, अतः वह आत्मा का स्वभाव न होने से हेय है। इसलिये उनमें होने वाला संकल्प परिग्रह है।

ममेदं वस्तु अहमस्य स्वामीत्यात्मात्मीयाभिमानः सकल्पः परिग्रह इत्युच्यते।

रा.वा.६/१५/३/५२५/२७

यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ इस प्रकार का ममत्व परिणाम परिग्रह है।

ति - विहेण जो विवज्जदि चेयण मियरं च सव्वघ संगं।

लोय ववहार विरदो णिगगंथत्तं हवे तस्स।। का.अनु.४०२

जो लोक व्यवहार से विरक्त मुनि चेतन और अचेतन परिग्रह को मन-वचन-काय से सर्वथा छोड़ देता है उसके निर्ग्रन्थपना अथवा आकिञ्चन्य धर्म होता है।

होऊण य णिस्संगो णियभावं णिगगहित्तु सुहदुध्दं।

णिदंदरेण दु वट्टदि अणयारो तस्स किचण्हं।। बा.अणु.७९

जो मुनि सब प्रकार के परिग्रहों से रहित होकर और सुख-दुःख देने वाले कर्म जनित निज भावों को रोककर निर्द्वन्दता से आचरण करता है उसके आकिञ्चन्य धर्म होता है।

परंतु अज्ञान और मोहवश जीव परपदार्थों को अपना मानता है उनमें एकत्व बुद्धि रखता है इसी कारण दुःखी होता है संयोग ओर वियोग में हर्ष व विषाद भी मोह के कारण होता है और यह मोह चेतन व अचेतन दोनों प्रकार के पदार्थों में उत्पन्न हो सकता है।

- (१) चेतन परिग्रह:- गाय, बैल आदि पशु धन, कुटुम्ब परिवार, दास-दासी
 (२) अचेतन परिग्रह:- धन-दौलत, सोना-चाँदी, वस्त्र-बर्तन आदि। परिग्रह के विषय में चार प्रकार के विचार वाले व्यक्ति नजर आते हैं :
- (१) मेरा सो मेरा, तेरा सो भी मेरा - कौरवों जैसे भाव अन्याय युक्त भाव
 (२) मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा - पांडवों जैसे न्याय संगत भाव
 (३) तेरा सो तेरा, मेरा भी तेरा - रामचंद्र जी जैसे उदार भाव
 (४) न तेरा न मेरा झूठा झमेला - मुनि महाराज की तरह वीतराग भाव

आज सारे संसार में झगड़े का मूल कारण अपने आप में आत्म संतुष्टि नहीं है। आत्म संतुष्टि न होने पर ही व्यक्ति दूसरे के धन को भी हरण करना चाहता है और कहता है मेरा तो मेरा है ही दूसरे का भी मुझे मिल जाए। यह असंतोष का प्रतीक है परंतु जब जीवन में आकिञ्चन्य धर्म का समावेश होता है तो मेरा और मेरेपन के भाव समाप्त हो जाते हैं और क्षणभंगुर संसार की स्थिति आँखों में झूलने लगती है। निज चतुष्टय को छोड़ परमाणु मात्र भी मेरा नहीं। यही है “उत्तम आकिञ्चन्य”।

रात्रि का दूसरा प्रहर बीता, तीसरे प्रहर की बेला आयी, किंतु अभी तक सम्राट श्रेणिक की आँखों में नींद न उतर सकी। उनके शयनकक्ष में शीतल मंद प्रकाश था, गवाक्षों से भीनी-भीनी सुगंधित वायु झर रही थी, दुग्धफेनिल सी धवल नरम सेज थी। सारा वातावरण प्रिय और प्रशांत था किंतु महाराज श्रेणिक का हृदय एकदम अशांत था। मन में अशांति और बेचैनी इतनी उमड़-घमड़ रही थी कि महाराज की पलकों पर खुमारी की छाया तक नहीं दिखाई देती थी।

सारी रात सम्राट कभी सेज पर लेटते, कभी करवटें बदलते कभी बेचैनी से शयनकक्ष में चहल-कदमी करने लगते। आखिर बात क्या है? इतने बड़े सम्राट को, जो अनेक राजाओं का अधिपति है, इतना भारी वैभव संपन्न है क्या दुःख है? क्या तकलीफ है? उनकी बेचैनी का कारण क्या है? मन में विचार चल रहा था उस बात का जो महावीर भगवान ने अपनी देशना में कहा था- मैं नरक जाऊँगा। माना कि मुझसे कुछ भूलें हुई हैं तो क्या उसका प्रतिकार नहीं हो सकता। यह भी अकाट्य सत्य है कि

भगवान महावीर की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती, मुझे भी उनकी वाणी पर अकाट्य श्रद्धा है। मैं भी उनका अनन्य भक्त हूँ, और उनकी कृपा मुझ पर बरसती है। वे अवश्य ही मुझे दुर्गति में जाने से बचाने का उपाय बतायेंगे। ऐसी ही विचारधाराओं के बीच सम्राट गोते खा रहे थे, विचारमग्न थे, बेचैन और चिन्तित थे।

सबेरा हो चला किंतु उनकी पलकें उनीदीं ही रह गयीं। सूर्य की किरणें विपुलाचल पहुँची ही थीं कि सम्राट् श्रेणिक भी वहाँ पहुँच गये। भगवान् की वंदनाकर उनसे अपनी हृदय व्यथा बड़े अनुनय-विनय से कही। भगवान् महावीर स्वामी की दिव्य देशना खिरी-“हे भव्य श्रेणिक! तुम्हारे ही राज्य में एक ‘पुण्यप्रभ’ नाम का एक श्रावक है, उससे ‘आकिञ्चन्य धर्म’ ले आओ, फिर आगे का उपाय मैं बताऊँगा। श्रेणिक बड़े हर्ष, उत्साह और आशा से विपुलाचल से उतरकर रथ पर बैठे और सारथी को ‘पुण्यप्रभ’ के घर की ओर रथ ले जाने का संकेत दिया।

सम्राट जब श्रावक के द्वार पर पहुँचे तो उसने महाराज का यथावत् आदर-सत्कार किया। सम्राट बोले- हे श्रावक श्रेष्ठ! भगवान् महावीर की दिव्य देशनानुसार मैं तुमसे ‘आकिञ्चन्य धर्म’ मांगने आया हूँ, मुझे निराश मत करना, मन चाहा धन दूंगा। वह श्रावक बोला- हे सम्राट! यह कोई देयक वस्तु नहीं है अपितु आत्मा का स्वभाव है। रत्न, वैभव, साम्राज्य आदि आत्मा से अत्यंत पृथक् वस्तुएं हैं जो अहंकार व ममकार का विसर्जन कर देती हैं तथा बाह्य चेतन-अचेतन पदार्थों की नश्वरता, क्षणभंगुरता को समझ लेता है। वह ‘उत्तम आकिञ्चन्य धर्म’ को पा सकता है। नरक और स्वर्ग भी पुद्गल की पर्यायें हैं उनमें आसक्ति व ममता त्याग कर दीजिए क्योंकि ये पर्यायें न सुखदा है न दुःखदा। सम्राट बोले- क्या ‘आकिञ्चन्य धर्म’ से नरक का दुःख मिट सकता है।

हे श्रेणिक महाराज! जब आकिञ्चन्यता आ जाती है तब अहंकार व ममकार न होने से बाहर के सुख न प्रिय लगते हैं और न ही दुःख अप्रिय। वह स्वर्ग में होने पर विचारता है-

“रमत अनेक सुरनि संग पे नित तिस परिणति तैं हटाहटी”
तथा नरक में-

“बाहिर नारकि कृत दुःख भोगत, अंतर सुखरस गटागटी”
स्वर्ग में देवियों के साथ रमण करता हुआ भी उनसे छुटकारे के लिए छटपटाता है और नरक के दुःख भोगते हुए भी आत्म या अंतर रस का गटागट पान करके अपूर्व
आध्यात्मिक धर्म प्रवचन - १०७

सुख का अनुभव करता है, सुख-दुख तो पर पदार्थों से हमारे अहंकार व ममकार की देन है। ममता से नाता तोड़ो और समता से नाता जोड़ो तो सुख-दुख की सब उलझनें अपने आप सुलझ जाती हैं। महाराज! आप प्रयोग करके देखिए, तो अपूर्व आनंद का सागर हृदय में लहराता नजर आयेगा।

राजा श्रेणिक के अंतरंग की ज्योति जल गई वे तो एक योगी की तरह ध्यानमग्न हो गये उस श्रावक के वचन उनके हृदय में उतर गये और आत्मरंजन की गुंजन प्रारंभ हो गई। उन्हें लगा उनके ज्ञान के बंद कपाट खुल गये हैं उनका हृदय समता के प्रकाश से भर गया क्योंकि ममकार के भाव चले गये उन्हें लगा उनकी समस्या सुलझ गयी हैं और उनकी याचना पूर्ण कृतार्थ हो गई है। सम्राट अति संतुष्ट और प्रसन्न हुए। दूसरे दिन समवशरण में देखा गया कि श्रेणिक शांत और संतुष्ट बैठे हैं। भगवान की वाणी मनोयोग से सुन रहे हैं। भगवत् वाणी ने यह भी रहस्योद्घाटन किया कि श्रेणिक का भविष्य अति उज्ज्वल है और वे अति शीघ्र ही इस भरत खण्ड में “तीर्थंकर” होंगे। यह सुन अनेक आगत सम्राट् श्रेणिक को देखने मुड़े, लेकिन श्रेणिक के मुखमंडल पर न आह्लाद के और न ही विषाद के कोई भाव लक्षित हो रहे थे ऐसा लगता था ममकार का त्याग कर समता में निमग्न थे।

बंधुओं! ज्ञानी की दृष्टि है वह आत्म तत्त्व पर ही होती है ज्ञानी विचार करता है मैं तो ज्ञायक एक चैतन्य पिण्ड हूँ, अखंड, अविनाशी हूँ, अन्य बाह्य पदार्थ कुछ भी मेरे नहीं हैं अपितु मेरे आत्म तत्त्व से सर्वथा पृथक् है यह अन्य पर पदार्थ मेरे हो जायेंगे तो या तो मुझे उनकी तरह अचेतन होना पड़ेगा या उन्हें मेरी तरह चेतन होना पड़ेगा लेकिन ये दोनों ही बातें संभव नहीं है। अतः वे निराकुलता को ग्रहण कर एकाग्र चिंता निरोध रूप ध्यान के बल से अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं।

संसार का जितना भी झगड़ा है वह मैं और मेरे पन तथा तू और तेरे पर का है। ‘मैं’ में अहंकार छिपा रहता है। मैं ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, अमीर, रूपवान, राजा आदि।

मैं मैं में बकरी कहे, गला कटाया जाए।

तू तू तू मैंना कहे, बैठी गूंजर खाये।।

कवि कहता है- बकरी मैं-में करती है तो उसका गला काटा जाता है और मैंना तू-तू करती है तो पेड़ पर बैठी-बैठी गूंजर खाती है। मीठे फल खाती है जो प्राणी अहंकार करता है वह नियम से गिरता ही है, पतन को ही प्राप्त होता है और ‘मैं’ अहंकार उत्पन्न करता है अतः उसका त्याग कर देना चाहिए।

परंतु जैन सिद्धान्त कहता है कि तू-तू करना भी छोड़ दो। क्योंकि मैं-मैं-तू-तू में ही झगड़े होते हैं। जो मैं है वह मैं ही है जो तू है वह तू ही है मैं तू नहीं और तू-मैं नहीं अतः इसे भूल जाइए। कवि कहता है-

क्या लेकर तू आया जगत में, क्या लेकर तू जायेगा।

सोच समझ ले रे वंदे नहीं आखिर तू पछतायेगा।।

अर्थात् न तो हम कुछ लेकर आये थे न कुछ साथ में ले जायेंगे फिर पर में ममत्व बुद्धि क्यों। पू. आचार्य गण अपने शिष्यों को भी संबोधन देते हैं कि हे शिष्य! इस संसार में कुछ अपना नहीं फिर पर में ममत्व बुद्धि क्यों? उसका सर्वथा त्याग करो। पू. आचार्य शिवकोटि महाराज अपने भगवती आराधना ग्रंथ में कह रहे हैं-

राग विवाग सतण्णादिगिद्धि अवतित्ति चक्कवट्टि सुहं।

णिस्संग णिव्वुइसुहस्स कहं अग्घइ अणंत भागं पि।। अ.भा.११८३

चक्रवर्ती का सुख रागभाव को बढ़ाने वाला तथा तृष्णा को बढ़ाने वाला है। इसलिये परिग्रह का त्याग करने पर रागद्वेष रहित मुनि को जो सुख होता है चक्रवर्ती का सुख उसके अनंत भाग की बराबरी नहीं कर सकता है।

सवंसंगविर्निर्मुक्तः संवृताक्षः स्थिराशयः।

धत्ते ध्यानधुरां धीरः संयमी वीरवर्णितां।। ज्ञान.१६/३३/१८१

समस्त परिग्रहों से जो रहित है और इन्द्रियों को संवर रूप करने वाला हो ऐसा स्थिर चित्त संयमी मुनि ही वर्धमान भगवान की कही हुई ध्यान की धुरा को धारण कर सकता है।

इस सत्य को जो मुमुक्षु प्राणी जान लेता है फिर उसका चित्त परिग्रह में आसक्त नहीं होता अपितु निष्परिग्रही भाव जाग्रत होने लगते हैं। इसी बात को पू. आचार्य अमृतचंद महाराज ने अपने अध्यात्म अमृत कलश में कहा है-

यतो न किञ्चित ततो न किञ्चित, यतो यतो याति ततो न किञ्चित।

विचार्य पश्यामि ततो न किञ्चित, स्वात्म बोधादधिकं न किञ्चित।।

अर्थात् न यहाँ मेरा कुछ है न वहाँ मेरा कुछ है, ऐसा ज्ञान जब जीवन में हो जाता है तो उसी का नाम आत्मज्ञान है आत्मज्ञान अंतरंग से उत्पन्न होता है। आत्मज्ञानी बाह्य संसार की उलझनों में नहीं उलझता।

इतने बड़े-बड़े तीर्थंकर, चक्रवर्ती अपना सारा धन, वैभव, कुटुम्ब-परिवार

छोड़ कर आ गये फिर मुख मोड़ कर उस ओर नहीं देखा घर का समाचार नहीं पूछा पू. आचार्य भगवन् शिष्य को संबोधन देते हुए कहते हैं-

आप संत है न। आपको न तो खेती करना है न ही दुकान चलाना है फिर अनावश्यक चर्चा क्यों ? परिवार जन संत के पास पहुँचते हैं मैं आपका बेटा हूँ, पत्नी हूँ, भैया हूँ परंतु आत्मध्यानी संत तो कहते हैं - कौन किसका ? मेरा कुटुम्ब परिवार तो सबसे निराला है - वे कहते हैं-

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी, शान्तिश्चिरं गेहनी ।

सत्यं सुनुमिदं दया च भगनी, भ्राता मनः संयमः ॥

शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं, ज्ञानामृतं भोजनं ।

ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे, कस्याद् भयं योगिनः ॥ १८ ॥

(वैराग्य-शतक)

धैर्य ही मेरा पिता है, क्षमा ही मेरी माता है, शांति मेरी पत्नी है, सत्य मेरे पुत्र हैं, दया मेरी बहिन है, संयमित मन मेरा भाई है। भूमि मेरी शैय्या है, दशों दिशाएँ ही मेरे वस्त्र हैं और ज्ञानामृत ही मेरा भोजन है ये सब मेरे कुटुम्बी जन हैं। तो मुझे किसका भय ? ये ही मेरे सच्चे कुटुम्ब परिवार हैं। इसके अतिरिक्त कोई मेरे माता-पिता नहीं क्योंकि जब शरीर ही मेरा नहीं तो उससे संबंधित पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं ?

घर के त्याग मात्र का नाम वैराग्य नहीं हैं, घर के प्रति मूर्च्छा के त्याग का नाम ही सच्चा वैराग्य है। आत्मा का आनंद क्या है ? - जो पर पदार्थों में रत है वह क्या आनंद को बतायेगा ? स्वात्मानुभव तो स्वसंवेदन ज्ञान पूर्वक ध्यान में लीन होने से होता है।

एक बार राजा भोज के यहाँ चोर, चोरी करने पहुँचा वह राजा भोज के कक्ष में पहुँच गया - देखा राजा अभी जाग रहे हैं तो वह धीरे से पलंग के नीचे छिप गया। वह मन में विचार कर रहा था जैसे ही राजा सोए मैं चोरी करूँगा। उस दिन राजा भोज को नींद नहीं आ रही थी। वे बड़े विद्वान थे अतः एक काव्य की रचना कर दी-

चेतोहरा युक्तयः सुहृदोऽनुकूलाः ।

सद्बान्धवाः प्रणयगर्भ गिरश्च भृत्याः ॥

वल्गान्ति दन्ति निवहास्तरला स्तुरङ्गा ।

अर्थात् मेरे मित्रगण मेरे अनुकूल हैं तथा मनोहरा मेरी युवती रानियाँ हैं। सुयोग्य बांधव हैं तथा मधुरभाषी दास-दासियाँ हैं, मदोन्मत्त हाथी हैं और चंचल घोड़े हैं। वे अपने धन

वैभव का बड़े अभिमान पूर्वक वर्णन कर रहे थे। सारी बात तीन चरणों में ही पूरी हो गई। अब चौथा चरण पूर्ण न हो पाने से राजा भोज की नींद पूर्ण रूपेण उड़ गई। जब तक कोई विद्वार्थी पदस-दैट् पूरा नहीं कर लेता उसे नींद नहीं आती, योगीजन जब ध्यान में डूबते हैं तो उन्हें नींद नहीं आती उसी प्रकार जब तक कवि अपनी कविता पूरी नहीं कर लेता उसे भी नींद नहीं आती।

चोर भी विद्वान था, वह तीनों चरणों को ध्यान से सुन रहा था। वह भी कवि था अतः श्लोक का चौथा चरण पूर्ण करते हुए बोला-

सम्मीलने नयनयो न हि किञ्चिदस्ति ।।

हे राजन्! आपके पास संपूर्ण वैभव है परंतु सब कुछ होते हुए भी नेत्रों के बंद होने पर कुछ भी नहीं रहता। राजा यहाँ-वहाँ चारों ओर देखते हैं परंतु कोई नहीं दिखता है चौथे चरण को पूर्ण करने वाले महाभाग्य! हे महापुरुष! तुम कौन हो? मेरे सम्मुख उपस्थित होओ। चोर ने सोचा अब तो बचना संभव नहीं अतः राजा के सम्मुख खड़ा हो गया।

“राजा भोज- तुम कौन हो?”

“चोर- मैं आपके नगर का चोर हूँ।”

चोरी करने के निमित्त आया था। सारी बात बता देता है राजा भोज चोर के चरणों में पड़ जाते हैं कहते हैं- आज मैं तुझे अपना गुरु बनाता हूँ तूने मेरी अंतरात्मा को जगा दिया, मुझे आत्मवैभव, आत्म निधि का ज्ञान हो गया असत्य अहंकार पर सत्य का प्रहार हुआ।

अतः पू. आचार्य महाराज कहते हैं किसी व्यक्ति को अपनी दौलत व संपदा का झूठा अहंकार नहीं करना चाहिए। क्योंकि आँखें बंद हो जाने के पश्चात् कुछ भी अपना नहीं अतः निज आत्मा में रमण करना ही श्रेयस्कर है। क्योंकि कहा भी है-

Proud is a hollow base of life.

अर्थात् अहंकार जीवन का पोला आधार है। जब आधार ही मजबूत नहीं नींव ही पक्की नहीं तो महल कैसे खड़ा रह सकेगा। अतः धन के अभिमान को छोड़कर आकिचन्य धर्म को अपनाना चाहिए। सामायिक पाठ में भी पू. आचार्य अमितगति महाराज कह रहे हैं-

न सन्ति वाहयाः मम केचनार्था, भवामि तेषां न कदाचनाहं ।

इत्थं विनिश्चिन्त्य विमुच्य वाहयं, स्वस्थं सदा त्वं भव भद्र भुक्त्यै ।। सा.पाठ २४

किंचित भी बाहय पदार्थ मेरा नहीं है, और न मैं कभी इनका हो सकता हूँ, ऐसा विचार कर रहे भद्र! बाह्य को छोड़ और मुक्ति के लिये स्वस्थ हो जा। आकिञ्चन्य धर्म की गुणमाल गाते हुए रईधुई कवि कहते हैं-

आकिञ्चन्यं ममत्वादि कृतदूरं सुखाकरम्।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥ १ ॥

ममत्व आदि के त्याग से उत्पन्न हुए और सुख को प्रदान कराने वाले उत्तम आकिञ्चन्य धर्म की प्राप्ति के लिए श्रेष्ठ भक्तिपूर्वक मैं पूजा करता हूँ।

धन दौलत में नहीं अपितु उसके त्याग में सुख है।

आकिञ्चणु भावहु अप्पउ झावहु, देहहु भिण्णउ णाणमउ।

णिरुवम गय वण्णउ, सुह संपण्णउ परम अतिंदिय विगयभउ ॥ २ ॥

आकिञ्चन्य धर्म की भावना इस प्रकार करो कि आत्मा देह से भिन्न है, ज्ञानमय है, उपमारहित है, वर्णरहित है, सुख से परिपूर्ण है, परमोत्कृष्ट है, अतीन्द्रिय है और भयरहित है इस प्रकार आत्मा का ध्यान ही आकिञ्चन्य धर्म है।

इसके विपरीत जब व्यक्ति राग-द्वेष, मोह करता है तो उसका परिग्रह संचय का भाव होता है और परिग्रह ही उसे पाप के दलदल में फंसा देता है। बंधुओं! जब व्यक्ति परिग्रह के चक्रव्यूह में फंस जाता है तो भूख, प्यास, नींद सब कुछ समाप्त हो जाता है। पू. आचार्य शिवकोटि महाराज कहते हैं-

रागो लोभो मोहो सण्णाओ गारवाणि य उदिण्णा।

तो तइया धेत्तुं जे गन्थे बुद्धी णरो कुणइ ॥ भ.११२१

राग, लोभ और मोह जब मन में उत्पन्न होते हैं तब इस आत्मा में बाह्य परिग्रह ग्रहण करने की बुद्धि होती है। परंतु यह परिग्रह पापों को ही उत्पन्न करता है पू. आचार्य महाराज कह रहे बाह्य परिग्रह दुःख का ही कारण है-

जह पत्थरो पडंतो खोभेइ देह पसण्णमवि पंकं।

खोभेइ पसंतंपि कसायं जीवस्स वह गंथो ॥ भ.आ.१११४

जैसे तालाब में पाषाण पड़ने से तलभाग में दबा हुआ भी कीचड़ क्षुब्ध होकर ऊपर जाता है वैसे परिग्रह जीव के प्रशान्त कषायों को भी प्रकट करते हैं।

धनवान व्यक्ति धन संपदा होते हुए भी दुःखी है नींद की गोलियाँ खा-खाकर भी नींद नहीं आती। ऐसा सब कुछ पाने से भी क्या लाभ इससे अच्छे तो योगी है जिनके

पास कुछ भी नहीं फिर भी सबसे सुखी है। इसीलिए कहा जाता है - जिनके पास कुछ नहीं उनके पास सब कुछ है। और जिनके पास सब कुछ है उनके पास कुछ भी नहीं। उन संतों के पास सुख का वह खजाना है जो अन्यत्र नहीं मिलेगा। छहदाला में पंडित दौलतराम जी ने कहा है-

सो इंद्र नाग, नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नहीं कह्यो ।

वे संत इतने सुखी हैं कि उनके समक्ष इंद्र, नाग, नरेन्द्र और अहमिन्द्र को भी वह सुख प्राप्त नहीं है। वे संत जन कष्ट सहकर भी सुखी हैं, शेर, भालू उनके शरीर को छिन्न-भिन्न भी कर दे तो भी वे सुखी ही रहते हैं। क्योंकि उन्होंने आत्मा का आश्रय लिया है, जो आत्मा का आश्रय लेते हैं उन्हें अपूर्व आनंद आता है। और जो आत्मा का आश्रय नहीं लेते उन्हें आनंद नहीं आ सकता। बाहर के संसार में कब तक घूमोगे अब तो चलो निज घर की ओर-

पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराए ।

नाम अनेक धराये कि हम तो कबहूँ न निज घर आए ।।

पर घरन अर्थात् नाना शरीरों को बहुत बार पाया परंतु निज आत्म तत्व की उपलब्धि अभी तक नहीं हो पायी। सच्चा शाश्वत सुख तो निज आत्मा में ही है। अतः उस आत्म तत्व की प्राप्ति हेतु हे भव्यों! आप 'उत्तम-आकिचन्य धर्म' को अंगीकार करो।

आकिचणु वउ संगह णिवित्ति, आकिचणु वउ सुहझाण सत्ति ।

आकिचणु वउ वियलिय ममत्ति, आकिचणु रयणत्तय पवित्ति ।। ३ ।।

सब परिग्रह से निवृत्त होना आकिचन्यव्रत है, चार प्रकार के शुभ ध्यानों को करने की शक्ति होना आकिचन्य व्रत है, ममत्व से रहित होना तथा रत्नत्रय में प्रवृत्ति होना आकिचन्य व्रत है संग्रह वृत्ति के त्याग बिना आकिचन धर्म संभव नहीं है कोई परिग्रह के साथ ध्यान करना चाहे तो संभव नहीं है। कहा भी है-

लोहा से वेष्टित यदि वस्त्र हो तो,

होगा नहीं कनक पारस संग में वो ।

तो संग से सहित जो तप भी करेंगे,

नहि आत्मा को परम भूत बना सकेंगे ।।

अर्थात् यदि लोहा कपड़े से वेष्टित है तो पारसमणि का संपर्क भी उसे सुवर्ण नहीं बना सकता उसी प्रकार परिग्रह के साथ कोई ध्यान करना चाहे तो नहीं हो सकेगा।

आकिचणु आउंचियइ चित्तु, पसरंतउ इंदिय वणि विचित्तु ।

आकिंचणु देहहु णेह चत्तु, आकिंचणु जं भव सुह विरत्तु ॥ ४ ॥

आकिंचन्य धर्म विचित्र इंद्रिय रूपी वन में फैलने वाले मन को आकुंचित करता है, देह से स्नेह का इसी से छूटता है, और सांसारिक सुखों से विरक्ति का कारण है।

तिणमित्तु परिग्गहु जत्थ णत्थि, आकिंचणु सो णियमेण अत्थि ।

अप्पापर जत्थ वियार सत्ति, पयडिज्जइ जहि परमेट्ठिभत्ति ॥ ५ ॥

छंडिज्जइ जहि संकप्प दुट्ठ, भोयणु वंछिज्जइ जहि अणिट्ठ ।

आकिंचणु धम्मू जि एम होइ, तं झाइज्जइ णिरु इत्थ लोइ ॥ ६ ॥

जहाँ पर तृणमात्र भी परिग्रह नहीं होता वहाँ नियम से आकिंचन्य धर्म होता है, जहाँ स्व व पर के विचार करने की शक्ति है, जहाँ पर परमेष्ठी की भक्ति प्रकट होती है, जहाँ पर दुष्ट संकल्पों का त्याग किया जाता है और जहाँ पर रुचिकर भोजन की भी वांछा नहीं रहती, वहाँ आकिंचन्य धर्म रहता है। मनुष्य को इस लोक में उसी का ध्यान करना चाहिए।

एहु जि पहावे लद्धसहावे तित्थेसर सिव णयरि गया ।

गय काम वियारा पुण रिसि सारा वंदणिज्ज ते तेण सया ॥ ७ ॥

इस आकिंचन्य धर्म के प्रभाव और सहायता से तीर्थंकर मोक्षरूपी नगरी को प्राप्त हुए हैं। इसी के कारण काम विकार से रहित ऋषिवर सदा वंदनीय होते हैं।

अतः बंधुओं! आकिंचन्य धर्म की महिमा को जानकर उसके चिंतन में उतरे तभी सच्चे सुख व शांति का संवेदन हो सकेगा।

“ बोलिए पार्श्वनाथ भगवान की जय ”



ब्रह्मचर्य है जगत पूज्य

जीव दयादम सच्चं अचोरियं बंभचेर संतोसे ।

सम्मदूसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ।। शी.पा.१९

जीवदया, इन्द्रिय दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, तप ये सर्व शील के परिवार हैं ।

एक रात्रौषितस्यापि या गतिब्रह्मचारिणः ।

न्न सा ऋतु सहस्त्रेण प्राप्तुं शक्या युधिष्ठिर ।। स्या.मं.२३/२७७/२५

हे युधिष्ठिर ! एक रात ब्रह्मचर्य से रहने वाले पुरुष को जो उत्तम गति मिलती है वह गति हजारों यज्ञ करने से भी नहीं होगी ।

पणिद रस भोयणेण य तस्सुव जोगे कुशील सेवाए ।

वेदस्सुदीरणाए मेहुण सण्णा हवदि एवं ।। जी.का.१३७

कामोत्तेजक स्वादिष्ट और गरिष्ठ रस युक्त भोजन करने से और काम कथा नाटक आदि के सुनने एवं पहले के भुक्त विषयों का स्मरण करने से तथा कुशील का सेवन करने से एवं वेद कर्म का तीव्र उदय या उदीरणा होने पर मैथुन संज्ञा होती है ।

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्ति प्रतिपादकान् ।

अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामकः सेवते सुधी ।। इष्टो.१७

प्रारम्भ में संताप देने वाले, प्राप्त हो जाने पर तृष्णा बढ़ाने वाले, अंत में बहुत कठिनाई से छूटने योग्य विषय भोगों को कौन बुद्धिमान पुरुष बड़ी रुचि से सेवन करता है अर्थात् कोई नहीं ।

वासना मात्र मेवैतत् सुखं-दुखं च देहिनाम् ।

तथा ह्युद्वेजयन्तेते भोगा रोगा इवापदि ।। इष्टो.६

संसारी जीव को इन्द्रियों से प्राप्त सुख-दुख कल्पना मात्र है इसलिये यह भोग आपत्ति के समय रोग की तरह आकुलता पैदा करते हैं ।

पाकं त्यागं विवेकं च वैभव मानितामपि ।

कामार्ताः खलु मुञ्चन्ति, किमन्यैः स्वन्वजीवितम् ।। क्ष.चू.

कामासक्त मनुष्य भोजन, दान, विवेक, सम्पत्ति, पूज्यता भी निश्चय से छोड़ता है और तो क्या अपने जीवन को भी छोड़ता है ।

पराराधनजाद् दैन्यात् पैशून्यात् परिवादतः ।

पराभावत्किमन्येभ्यो न विभेति हि कामुकः ॥ क्ष.चू.

विषयासक्त मनुष्य दूसरों की खुशामद से उत्पन्न दीनता, चुगली से निंदा से, तिरस्कार से नहीं डरता फिर और बातों में क्या डरेगा ।

विषयासक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति ।

न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यभाक ॥ क्ष.चू.

विषयों में लवलीन मन वाले मनुष्यों का कौन सा गुण नष्ट नहीं होता अर्थात् सभी गुण नष्ट हो जाते हैं न तो उसमें पण्डितपना, न मनुष्यता, न कुलीनपना और न सत्य वचन होते हैं ।

सुती श्रेणापि कामेन स्वल्पकालं तु वेदना ।

खण्डेन तु शीलस्य भवकोटिषु वेदना ॥

अति तीव्र काम की दाह से भी थोड़े ही काल तक पीड़ा रहती है परन्तु ब्रह्मचर्य को खण्डित कर देने से करोड़ों जन्मों तक कष्ट सहना पड़ता है ।

गन्धे रूपे रसे स्पर्शे, शब्द स्त्रीणां न सज्जति ।

जातु यस्य मनस्तस्य, ब्रह्मचर्यं मखंडितम् ॥ म.का. ११५९

जिस पुरुष का मन स्त्रियों के मनोहर गंध, रूप, रस, स्पर्श और शब्दों में कभी भी नहीं जाता उस पुरुष का ब्रह्मचर्य अखंडित रहता है ।

रवखाहि बंभचेर अब्भंभं दसविधं तु वज्जित्ता ।

णिच्चं पि अप्यमत्तो पंचविधे इत्थिवेरगे ॥ भ.आ. ८७१

हे क्षपक ! दश प्रकार के अब्रह्म को त्याग कर ब्रह्मचर्य की रक्षा कर और पाँच प्रकार के स्त्री वैराग्य से सदा सावधान रह ।

कोऽपि न शील भ्रष्टं स्व माता दिनामालोकितुं क्षमः ।

यथा यूयं तथातानपि शील प्रियं सम्बधिना ॥ उपा. ४/८८

पर स्त्रियों के संबंधी पिता, पति, पुत्र, भाई, दादा, ताऊ, चाचा इत्यादि कोई भी अपनी माता, बहिन, बेटा, पुत्र वधु, भतीजी के शील का नाश होता देखने को समर्थ नहीं है जैसे तुमको शील प्रिय है उसी प्रकार उनको भी शील धर्म प्रिय है ।

शील ही सहज आभूषण है, शील ही उत्तम मण्डन है, शील पुष्ट नाश्ता है, शील ही परम संरक्षण है। शील से परे दूसरा कोई बंधु नहीं है, शील से श्रेष्ठ कोई मित्र नहीं है, शील के समान कोई माता नहीं है और शील से बढ़कर कोई पिता नहीं है।

बंधुओं! आज हम पर्यूषण पर्व की दसवीं पायरी 'उत्तम-ब्रह्मचर्य' धर्म को समझेंगे। 'ब्रह्मचर्य' सभी धर्मों का सार है। सभी धर्मों में श्रेष्ठ है। निश्चय से ब्रह्मचर्य के स्वरूप को देखे तो-

“ब्रह्मणे चरति इति ब्रह्मचर्यः

ब्रह्म अर्थात् निज आत्मा जो अपनी निज आत्म तत्व में ही आचरण करना या रमण करना वह ब्रह्मचर्य व्रत है। निश्चय ब्रह्मचर्य के स्वरूप को बताते हुए पू. आचार्य शिवकोटि महाराज कहते हैं-

जीवो बंभा जीवमि चैव चरियाह विज्ज जा जणिंदो।

तं जाणं बंभचेर विमुक्क परदेह तित्तिस्स।। भ.आ.८७८

जीव ब्रह्म है जीव ही में जो मुनि की चर्या होती है उसको परदेह की सेवा रहित ब्रह्मचर्य जानो। अपने स्वभाव से जब हम बहिर्भूत रहते हैं तब समझ लेना चाहिए कि हम ब्रह्म में नहीं अब्रह्म में हैं। यह शुद्ध निश्चय नय का विषय है। व्यवहार नय की दृष्टि से देखे तो तत्त्वार्थ सार में पू. आचार्य महाराज कहते हैं-

स्त्री संसक्त शय्यादे, रनुभूताडगनास्मृतेः।

तत्कथायाः श्रुतेश्च, स्याद् ब्रह्मचर्य हि वर्जनात्।। त.सा.६/२।।

स्त्रियों से संसक्त शय्या, पूर्व भुक्ता स्त्रियों का स्मरण, स्त्रियों की राग वर्धक कथाओं के सुनने का त्याग करना ब्रह्मचर्य धर्म है। अन्य ग्रंथों में भी व्यवहारनय से ब्रह्मचर्य व्रत के स्वरूप को बताते हुए कहा है-

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रुवं।

काम कहादि णिरीहो णव विह बंभं हवे तस्स।। का.अनु.४०३

जो मुनि स्त्रियों के संग से बचता है, उनके रूप को नहीं देखता है, काम की कथा आदि नहीं करता, उसके नवधा ब्रह्मचर्य होता है।

सव्वंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुष्भावं ।

सो बंभचेर भावं सुक्करि खलु दुद्धरं धरदि ।। बा.अणु.८०

जो पुण्यात्मा, स्त्रियों के सुंदर अंगो को देखकर भी उनमें राग रूप बुरे परिणाम करना छोड़ देता है वह दुद्धर ब्रह्मचर्य को धारण करता है ।

अथवा जो ब्रह्मचर्य व्रत का धारी होता है वह प्रत्येक स्त्री को माता, पुत्री या बहिन की दृष्टि से देखता है । मनोजयी संतों को स्त्री, स्त्री के रूप में नहीं दिखती उनकी दृष्टि अति पावन होती है । उनकी दृष्टि में तो सभी पुरुष ही हैं । पुरुष अर्थात् आत्मा । आत्मा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक नहीं है, आत्मा वेद से रहित है । जो धर्म व मोक्ष का पुरुषार्थ करे वह पुरुष है । पू. आचार्य अमृतचंद्र महाराज पुरुषार्थसिद्धियुपाय ग्रंथ में कहते हैं-

चैतन्य स्वरूप आत्मा ही पुरुष है, दृष्टि में स्त्री आ जाए तो दृष्टि विकार युक्त हो जायेगी । स्त्रियाँ, साधिव्याँ अथवा ब्रह्मचर्य व्रत की धारी अपने को स्त्री नहीं मानती । यदि स्त्री मानने लग जाए तो स्त्रियोचित स्वभाव दुर्गुण संभव हो सकते हैं । पूज्य गुरुदेव पू. आचार्य विमल सागर जी कहते थे - आर्यिकाएँ स्त्रियाँ नहीं हैं, क्योंकि वे मोक्ष का, धर्म का पुरुषार्थ करती हैं जो आर्यिकाएँ अपने को पुरुष मानती हैं वे कायरता, विकार, हीनता, डर, भय, शिथिलता नहीं करती अपितु उनकी पुरुषार्थ रूप प्रवृत्ति होती है । महाव्रतों को धारण करने से वे वीरांगनाएँ कहलाती हैं । पू. आचार्य श्री कहते थे कभी भी अपने अंदर हीनता नहीं रखना चाहिए । जिसका मन हीन होता है, वह विकारी, संकोची, शर्मीला, भयभीत दिखता है, जो अपने आप को पुरुष मानता है उसके अंदर भय, विकृति नहीं रहती, किसी भी प्रकार की संकोची शर्म नहीं रहती । बिना वीरता आये साध्वी होना संभव नहीं है । संकोच, शर्म रहे तो शील की रक्षा कठिन है । आर्यिकाएँ वीरता से चर्चा करती हैं । बात-बात में हँसना, टेढ़ी निगाह से देखना ये दुर्गुण ही पतन के कारण हैं, अतः ऐसे दुर्गुण उनके जीवन में नहीं रहते । झेपता वह है जो विकार से युक्त होता है । वीर स्त्रियाँ वीरता के साथ रहती हैं । तथा वीरता जीवन में कब आती हैं ? जब अंदर व बाहर से ब्रह्मचर्य रहता है तब वीरता आती है । लड़ाई-झगड़े का नाम वीरता नहीं । अपितु धर्मोचित कार्यों में निर्भय, व्रत में मजबूत, मन को नियंत्रित करना ब्रह्मचर्य व्रत है । साधवियों की भाषा प्रताप गुण से युक्त होती है । स्तुति पाठ में सात्विकता, भाव-भीनापन झलकता है । उनका गाने-बजाने का त्याग होता है । उनकी भाषा-शैली में गंभीरता, प्रज्ञा शक्ति, कला-कुशलता व हाव-भाव से रहित सौम्यता पूर्ण शैली होती है लौकिक गायनों में दूसरों को रिझाने का प्रयत्न नहीं रहता है साधवियों में सात्विकता

होती है इसीलिए शील को संभाल पाती हैं व दूसरों को प्रेरित कर पाती हैं तथा उनकी चर्या दूसरों को शीलवान बना देती हैं।

शील की जग में बड़ी महिमा गायी है कहा है-

शीलात्सुमुज्जल कायः शीलेन विपुलं कुलम्।

शीलेन जायते नाकः, शीलं चक्रि पद प्रदम्।। पा.प्र.२१/८९।।

शील के पालने से तेजस्वी शरीर की प्राप्ति होती है, शील से कुल की विपुलता होती है, शील से स्वर्ग मिलता है तथा कुल की विपुलता होती है, शील से स्वर्ग मिलता है तथा शील चक्रवर्ती पद का दाता है। इसके विपरीत जो कुशील है, शील से सर्वथा रहित है वे लोक में सदा निंदा को प्राप्त होते हैं। और उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। वे लोक में कड़ारपिंग की तरह तिरस्कृत होते हैं।

एक कांपिल्य नामक शहर में नरसिंह नाम का राजा राज्य करता था वह बड़ा ही बुद्धिमान और धर्मात्मा था वह न्यायनीति से अपने राज्य का पालन करता था अतः सारी प्रजा उससे अत्यंत प्रसन्न रहती थी। उन राजा का एक सुमति नाम का राजमंत्री था उसकी स्त्री का नाम धनश्री था। उनके एक कड़ारपिंग नाम का पुत्र था जो कि अत्यंत व्यभिचारी था। उसी नगर में एक कुबेरदत्त नाम का सेठ भी रहती था जो कि अत्यंत धर्मात्मा व सज्जन प्रकृति था उसकी अत्यंत रूपवती स्त्री थी जिसका नाम प्रियगुसुंदरी था।

एक दिन प्रियगुसुंदरी जिनालय का दर्शन कर बाहर निकल रही थी तभी अचानक उस पर कड़ारपिंग की दृष्टि पड़ गई। कड़ारपिंग उसके रूपसौंदर्य को देख उस पर मोहित हो गया तथा काम के बाणों से घायल हो गया, उसकी चेष्टाएँ पागलों सदृश हो गई। जब वह घर पहुँचा तो उसकी माँ पुत्र की ऐसी अवस्था देख भाँप गई कि अवश्य कोई गंभीर बात है उसने बड़े प्रेम से पुत्र की ऐसी अवस्था का कारण पूछा तो काम के वशीभूत लज्जा रहित उस कड़ारपिंग ने सारी बात माँ को बता दी और कहा कि यदि प्रियगुसुंदरी मिलेगी तो ही मेरा जीवन रहेगा अन्यथा मैं जीवित न रहूँगा। जो व्यक्ति विषय वासनाओं में फंस जाता है वह पागल के समान हो जाता है बंधुओं! पू. आचार्य गुणभद्र महाराज भी यही बात कर रहे हैं-

अन्धादयो महानन्धो विषयान्धी कृतेऽक्षणः।

चक्षुषान्धो च जानाति, विषयान्धो न केनचित्।। आ.शा.

अंधे व्यक्तियों में वह व्यक्ति महा अंधा है जो विषय-वासनाओं से अंधा है। क्योंकि आँखों से अंधा व्यक्ति तो फिर भी कुछ जानता है, समझता है पर विषयान्ध व्यक्ति कुछ भी नहीं जानता है। पुत्र की अवस्था को देख उसकी माँ ने पति - मंत्री से सब हाल कह सुनाया तथा मोहवश पुत्र के जीवन की भिक्षा मांगी। मंत्री यद्यपि राजभक्त था बुद्धिमान था परंतु मोह ने उसकी बुद्धि को भी कुण्ठित कर दिया। और उसने पुत्र व्यामोह में फंस एक षड्यंत्र रचा। वह राजा के पास गया और बोला हे राजन्! रत्नद्वीप में एक किंजल्क नाम का पक्षी है वह यदि यहाँ आ जाये तो नगर में कभी महामारी, दुर्भिक्ष, अपमृत्यु, रोग आदि नहीं होगा। इस दुर्धरा कार्य को करने में हमारे नगर के सेठ कुबेरदत्त ही समर्थ हैं वे प्रज्ञावान और साहसी हैं अतः आप उन्हें रत्नद्वीप जाने की आज्ञा प्रदान करें।

राजा, मंत्री की बातों से बड़ा प्रभावित हुआ मंत्री जी के जगहितैषी जान उनकी बात विश्वास कर लिया और सेठ जी को रत्नद्वीप जाने की आज्ञा प्रदान की। इधर सेठ की बुद्धिमत्ता पत्नी प्रियंगुसुंदरी को यह किंजल्क पक्षी की बात पता चली तो वह भाप गई कि दाल में कुछ काला है वह सेठ जी से बोली - स्वामी, इस नाम का प्रथम तो कोई पक्षी होता नहीं और यदि यह बात मान भी ले तो सोचिए जहाँ यह पक्षी रहता है उस रत्नद्वीप में क्या कोई प्राणी मरण को प्राप्त नहीं होते। यह संभव नहीं। उस विदुषी को षड्यंत्र को समझते देर न लगी उसने सेठ जी को कड़ारपिंग की दृष्टि पड़ने विषयक सारी बात सुना सेठ जी को सावधान किया और बोली चूंकि राजाज्ञा का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है इसलिए आप यहाँ से जहाज को रवाना कर स्वयं वापस लौट आना, तो राजा तो यही समझेंगे कि आप रत्नद्वीप चले गये। सेठजी ने वैसा ही किया इधर कड़ारपिंग अपने अभीष्ट को सिद्ध हुआ जान अत्यंत हर्षित हुआ। और सीधा प्रियंगुसुंदरी के घर पहुँचा इधर प्रियंगुसुंदरी पहले ही सावधान थी उसने पाखाने को ऊपर से साफ सुथरा कर उसमें बिना निबाड़ का पलंग बिछा उस पर ऊपर से चादर ढंक दी। जैसे ही कड़ारपिंग ने प्रवेश किया व कामातुर हो वासनायुक्त वचन कहने लगा तब प्रियंगुसुंदरी ने पहले से बनाये कमरे में चलने का आग्रह किया जैसे ही वह पलंग पर बैठा बदबूदार गढ़े में जा गिरा। उस गंदे बदबूदार कमरे में प्रियंगुसुंदरी ने उसे कैद कर दिया पूरे ६ माहीने तक वह वहाँ बंद रहा।

बंधुओं! धिक्कार है उस कामवासना को जो ऐसी दुर्दशा का भाजक बना देती है।

पड़े काम के फेर में, नाम हुआ बदनाम।

दाम गया बल भी गया, बिगड़े काम तमाम।।

६ माहीने बाद जब नगरसेठ का जहाज वापस आया तो नगर में खुशहाली छा

गई कि नगरसेठ किजल्क पक्षी को लाया होगा, अब हमारे दुःख दूर होंगे। लेकिन इधर ६ महीने से पाखाने में पड़े कड़ारपिंग को सेठ ने विभिन्न पक्षियों के पंख पूरे शरीर में चिपकाकर एवं मुख काला कर राजा के सामने किजल्क पक्षी के रूप में प्रस्तुत किया और सारी घटना सुना दी। कड़ारपिंग को व्यभिचारी जान राजा ने उसका मुख काला कर गधे पर बिठाला तथा नगर से बाहर निकाल दिया। जो व्यक्ति कुशील सेवन करते हैं परस्त्रियों पर बुरी दृष्टि रखते हैं वे लोक में कड़ारपिंग की भाँति दुर्दशा को प्राप्त होते हैं। अतः प्रत्येक प्राणी को चाहिए कि अपने जीवन में शीलव्रत अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करें।

क्योंकि ब्रह्मचर्य तीनों लोकों के प्राणियों से वंदनीय/अर्चनीय होता है। 'ब्रह्मचर्य' गुणों का समुद्र है इसलिए जैन धर्म में ब्रह्मचर्य की महिमा गायी गई है शील ही सब कुछ है शील से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। पू. आचार्य भगवन् कहते हैं-

सहजं भूषणं शीलं, शीलं मण्डन मुत्तमम्।

पाथेयं पुष्कलं शीलं, शीलं रक्षण मूर्जितम्।। अ.श्रा. १२/४६।।

शीलतो न परो बंधुः, शीलतो न परः सुहृता।

शीलतो न परा माता, शीलतो न परः पितः।।अ.श्रा. १२/४९।।

शील ही सहज आभूषण है, शील उत्तम मण्डन है, शील पुष्ट नाशता है, शील ही परम संरक्षण है। शील से परे कोई दूसरा बंधु नहीं है, शील से श्रेष्ठ मित्र नहीं है, शील के अलावा कोई माता नहीं है और शील से उत्कृष्ट कोई पिता नहीं है।

अतः ऐसे महान शील को तुम ग्रहण करो। रइधुई कवि कहते हैं-

स्त्रीव्यक्तं त्रिजगत्पूज्यं ब्रह्मचर्य गुणार्णवम्।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये।।१।।

स्त्री का त्याग करने से जो प्राप्त होता है, तीनों लोकों में पूज्य है और गुणों का समुद्र है, उस ब्रह्मचर्य व्रत की पूजा मैं बड़ी भक्ति भाव से उसकी प्राप्ति के लिए करता हूँ।

पू. आचार्यों भगवंतो ने कहा है कि स्त्री मात्र के त्याग का नाम ब्रह्मचर्य नहीं है अपितु वह ब्रह्मचर्य व्रत ९ कोटियों से पालन किया जाता है मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना को परस्पर गुणा करने से ९ भंग बन जाते हैं इन्हीं ९ भंगों को ९ कोटि कहते हैं। मनकृत, वचनकृत, कायकृत, मन कारित, वचन कारित, काय कारित, मन अनुमोदना, वचन अनुमोदना, काय अनुमोदना इन नव कोटि से जोक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है वही सच्चा ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य व्रत भेद व अभेद रूप से दो प्रकार का है शुद्ध निश्चय नय से - आत्म स्वरूप में रमना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। यह अभेद दृष्टि है। व्यवहार नय से दो भेद हैं - (१) ब्रह्मचर्याणुव्रत (२) ब्रह्मचर्य महाव्रत। ब्रह्मचर्य व्रत के विषय में पू. आचार्य समंतभद्राचार्य महाराज ने अपने रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रंथ में कहा है-

मल बीजं मल योनौ, गलन्मलं पूति गंधि बीभत्सं।

पश्यन् नङ्ग मनङ्गाद, विरमति यो ब्रह्मचारी सः॥१४३॥

जो शरीर को रजोवीर्य रूप मल से उत्पन्न (मल बीज) मल को उत्पन्न करने वाला, मल को बहाने वाला, दुर्गंध युक्त और घृणात्मक देखता हुआ काम सेवन से विरक्त होता है, वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी कहलाता है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत में तो परस्त्री मात्र का त्याग होता है। ब्रह्मचर्याणुव्रती स्वस्त्री में संतोष रखता है इसलिए इसे स्वदार संतोष व्रत कहते हैं।

सर्वाथसिद्धि ग्रंथ में पू. आचार्य पूज्यपाद महाराज ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण बताते हुए कहते हैं-

उपात्ताया अनुपात्तायाश्च पराङ्गनायाः

संगान्निवृत्तरतिर्गृहीति चतुर्थमणुव्रतम् ॥स.सि.७/२०/३५८/१०॥

गृहस्थ के स्वीकार की हुई या बिना स्वीकार की हुई परस्त्री का संग करने से रति हट जाती है। इसलिए उसके परस्त्री त्याग नाम का चौथा अणुव्रत है

न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पाप भीतेर्यत्।

सा परदार निवृत्तिः स्वदार संतोष नामापि ॥ र.श्रा.५९॥

जो पाप के भय से न तो परस्त्री के प्रति गमन करें और न दूसरों को गमन करावें वह परस्त्री त्याग तथा स्वदार संतोष नामक अणुव्रत है। तथा ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी स्वस्त्री का भी त्यागी होता है। ब्रह्मचर्य महाव्रती ९ कोटि से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है उसका सकल व्रत होता है।

ब्रह्मचर्य महाव्रत के विषय में मूलआराधना ग्रंथ में कहा है-

मादुसुदा भगिणीविय दट्टूणित्थित्थियं च पडिरुवं।

इत्थिकहादिणियत्ती तिलोयपुज्जं हवे बंभं ॥ भू.आ.८/२९२

जो बाला, वृद्धा यौवन वाली स्त्री को देखकर अथवा उनकी तस्वीरों को देखकर उनको

माता, पुत्री, बहन समझ स्त्री संबंधी कथादि का अनुराग छोड़ता है वह तीनों लोकों का पूज्य ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

दत्तूण इच्छिरुवं वांछाभाव णिवत्तदे तासु।

मेहुण सण्ण विवज्जिय परिणामो अहव तुरीयवदं।। नि.सा.५९।।

स्त्रीयों का रूप देखकर उनके प्रति वांछा भाव की निवृत्ति अथवा मैथुन संज्ञा से रहित परिणाम चौथा महाव्रत है।

ब्रह्मचर्य स्वदार संतोषः परदार निवृत्ति कस्यचित्सर्वस्त्री निवृत्तिः।

स्वस्त्री संतोष अथवा परस्त्री से निवृत्ति व किसी के सर्वथा स्त्री के त्याग का नाम ब्रह्मचर्य व्रत है।

ब्रह्मचर्य व्रत का मजबूत करने के लिए पाँच भावनायें व उसके पाँच अतिचार आचार्यों ने कहे हैं-

भावनायें-

स्त्रीराग कथा श्रवण तन्मनोहराङ्ग निरीक्षण पूर्वरातानुस्मरण

वृष्येष्ट रस स्वशरीर संस्कार त्यागाः पञ्च।। त.सू.७/७।।

स्त्री राग कथा श्रवण त्याग, तन्मनोहराङ्ग निरीक्षण त्याग, पूर्वरातानुस्मरण त्याग व वृष्येष्ट रस त्याग व स्वशरीर संस्कार का त्याग ये ५ भावनाएँ हैं।

अतिचारः-

परविवाहकरणेत्वारिकापरिग्रहीतापरिगृहीतागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः।।

त.सू.७/२८

पर विवाह करण, इत्वारिका परिग्रहीता ग्रहण, अपरिगृहीता गमन, अनङ्गक्रीडा व कामतीव्राभिनिवेश ये पाँच अतिचार हैं। इनसे सदा बचने का प्रयत्न करें।

बंधव्वउ दुद्धरु धारिज्जइ वरु फेडिज्जइ विसयास णिरु।

तिय सुवखइं रत्तउ मण करिमत्तउ तं जि भव्व रक्खेहु थिरु।। २।।

दुर्धर और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना चाहिए महावीराष्टक में कहा है- काम ऐसा सुभट है जिसने तीनों लोकों में विजय पा ली है।

अनिर्वारोद्रेकस त्रिभुवन जयी काम सुभटः।

कुमारावस्थायामपि निज बलाद्येन विजितः।

स्फुरन् नित्यानन्द प्रशम पद राज्याय स जिनः,

महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे ॥ ७ ॥

हे अंतिम तीर्थकर! हे पंचम बालयति भगवन्! हे महावीर प्रभु! आप धन्य हैं। जिसने तीनों लोकों के प्राणियों के मन पर आक्रमण किया है आपने ऐसे काम सुभट को कुमारावस्था में ही परास्त कर दिया है अतः आप अपूर्व बलशाली हैं इसलिए आपके जीवन में आनंद ही आनंद है। ब्रह्मचर्य का धारी प्रतापी होता है, सदा प्रसन्न रहता है। शक्ति का ह्रास विकारों से होता है। जिसका मन विषय-वासनाओं में रहता है। उसका शरीर सूख जाता है, भोजन नहीं रुचता, रोग बीमारी का शिकार हो जाता है, Aids, Cancer आदि का शिकार हो जाता है। जो व्यक्ति इंद्रियों को वश नहीं करता वह अपने जीवन के साथ खिलवाड़ करता है वह जीवन से हाथ धो बैठता है। आप पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते तो कम से कम स्वदार संतोष व्रत धारण कर लीजिए परस्त्री सेवन, वेश्या गमन का त्याग कर दीजिए। क्योंकि कुशील के सेवन से Aids जैसी खतरनाक बीमारियाँ हो जाती है। यह लाइलाज बीमारी है यह बीमारी बंदर से उत्पन्न हुई है यह संसर्गज बीमारी है यदि कोई Aids के रोगी के पास बैठता है तो वह भी उस बीमारी से प्रभावित हो जाता है। एक बार News में पढ़ने में आया कि विदेशों में Aids रोगी को जीता-जागता एक गड्ढे में पटक दिया जाता है और जला दिया जाता है।

बंधुओं! एक कुशील सेवन का इतना भयानक दुष्परिणाम प्राणियों को भोगना पड़ता है। शील की रक्षा नहीं की इसलिए कुत्ते की मौत मर रहे हैं। इसलिए Government ने ही नोटिश निकाला ब्रह्मचर्य को धारण करो। ब्रह्मचर्य ही तीनों लोकों में श्रेष्ठ है। अतः विषयाशा का त्याग करो तथा यह जीव स्त्री-सुख में लीन मनरूपी हाथी से मदोन्मत्त हो रहा है, इसलिए हे भव्य! स्थिर चित्त होकर उस ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करो। रइधुई कवि आगे कहते हैं-

चित्तभूमि मयणु जि उप्पज्जइ, तेण जि पीडिउ करइ अकज्जइ ।

तेयहं सरीरइं णिंदइं सेवइ, णिय पर णारि ण मूढउ वेयइ ॥ ३ ॥

कामदेव नियम से चित्तरूपी भूमि में उत्पन्न होता है। उससे पीड़ित व्यक्ति अकार्य भी कर डालता है, वह स्त्रियों के निन्द्य शरीरों का सेवन करता है और परस्त्रियों में लंपटी होता हुआ अपनी और पर स्त्री में भेद नहीं करता। उसकी स्थिति बुद्धि रावण की तरह कुण्ठित हो जाती है। रावण की स्वयं की १६००० सुंदर-सुंदर स्त्रियाँ थी सभी रूपवान भी थी परंतु सीता में उसका चित्त आसक्त हो गया फलस्वरूप सारी लंका को खो बैठा। अपनी और परायी स्त्री का भेद कामान्ध को नहीं दिखता।

गेवडइ गिरइ महादुह भुंजइ, जो हीणु जि बंभवउ भंजइ।

णिय जाणेपिणु मण वय काएं, बंभचेरु पालहु अणुराए।। ४।।

जो हीन मनुष्य होते हैं वे ब्रह्मचर्य व्रत को पाकर भी खंडित कर देते हैं, जिससे विभिन्न कष्टों को आमंत्रण कर जीवन का नाश कर देते हैं। और नरक जैसी दुर्गति को प्राप्त करते हैं और वहाँ के महान दुःखों को भोगते हैं यह जानकर मन, वचन और काय से से अनुराग पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करो।

बह्म सहु जि लब्भइ भवपारउ, बंभय विणु वउ तउ जि असारउ।

भव्य विणु कायकिलेसो, विहल सयल भासियइ जिणेसो।। ५।।

जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है वह भव से पार हो जाता है। ब्रह्मचर्य व्रत के बिना जितना भी तप, व्रत, जप किया जाए सब असार है मात्र कायक्लेश ही है, शरीर को सुखाना मात्र ही है क्योंकि आपका मन पवित्र नहीं है। अपने मन को पवित्र बनाना चाहिए, कुशील से हटाकर ब्रह्मचर्य में, आत्म स्वरूप में लगाना चाहिए। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

बाहिर फरसिंदिय सुह रक्खउ, परम बंभु आभितरि पेक्खउ।

उवाएं लब्भइ सिव हरु, इम रइधू बहु भणइ विणययरु।। ६।।

बाह्य स्पर्शन इंद्रिय जन्य सुख से अपने आत्मा की रक्षा करो।

क्योंकि यदि बाह्य विषयों में आसक्ति होगी तो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता। अतः वस्येष्ट रस (गरिष्ठ भोजन) स्वशरीर संस्कार का त्याग करो। यदि आप अति गरिष्ठ कामोत्तेजक पदार्थ खायेंगे तो ब्रह्मचर्य का पालन संभव नहीं। जल का उद्गम छोटा होता है परंतु जैसे-जैसे बढ़ता है तो बड़ी भारी नदी हो जाती है। इसी प्रकार विषयों का उद्गम छोटे रूप में होता है परंतु फिर बढ़ता ही जाता है।

तपस्या का अर्थ धातु और उपधातु को क्षीण कर देना है क्योंकि ये रहेगी तो काम को उत्पन्न करेंगी। एक बार एक सज्जन मेरे पास आये और बोले - महाराज! एक बात पूछना चाहता हूँ। संतजन इतनी छोटी उम्र में दीक्षा लेकर भी विकार रहित रहते हैं क्यों? मैंने कहा - क्योंकि वे इंद्रियों को पुष्ट करने वाले गरिष्ठ पदार्थों का सेवन नहीं करते, सात्विक भोजन करते हैं। ताकि वह इंद्रियों को उत्तेजित न करे, आहार तो आहार है सप्त धातुएँ तो बनेगी ही, तो हमारे गुरु महाराज कहते थे यदि आहार गरिष्ठ भी ले लिया तो कोई बात नहीं परंतु फिर उतनी तपस्या भी होनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेव पू. आचार्य विमल सागर जी महाराज हमारे गुरुणांगुरु पू. आचार्य महावीर कीर्ति महाराज के बारे में बताते थे एक बार पू. आचार्य महावीर कीर्ति जी आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

महाराज आहार के लिए जिस चौके में गये वहाँ एक श्रावक ने एक कटोरी में घी भरा और पानी की तरह महाराज को चला दिया। महाराज ने भी सहजता से वह ले लिया। दूसरी कटोरी, फिर तीसरी कटोरी चलाता गया। महाराज ने भी तीन अंजुलि घी ले लिया। अब एक अन्य श्रावक जो आहर देख रहा था उसे बड़ा आश्चर्य हुआ उसके मन में विचार आया इतना घी तो कोई गृहस्थ भी नहीं ले सकता वह तो बीमार पड़ जायेगा और ये संत होकर इतना घी पी गये, ये अपने ब्रह्मचर्य का पालन कैसे करेंगे।

आहारोपरांत महाराज अपने निवास स्थान पर पहुँचे वह श्रावक भी पीछे-पीछे चल दिया, महाराज तो शीर्षासन से सामायिक में तल्लीन हो गये और ३ घंटे तक उनकी सामायिक चली। वह श्रावक खिड़की से सारा दृश्य देख रहा था, सामायिक के उपरांत वह महाराज के पास आया और चरण पकड़ लिये। और बोला - हे भगवन्! आपकी साधना को धन्य है और अपने मन में पूर्व में आये सारे विचार बता दिये महाराज से क्षमा याचना करने लगा।

तो बंधुओं! कहने का तात्पर्य यही है यदि संतजन कदाचित् गरिष्ठ भोजन भी करते हैं तो फिर उतनी तपस्या भी करते हैं। इसके अतिरिक्त वे दिन में एक बार एवं खड़े-खड़े ही आहार लेते हैं। खड़े-खड़े आहार लेने वाला कभी भी भरपेट नहीं खा सकता। साथ ही जब तक खड़े होने की ताकत रहेगी तभी तक आहार लूंगा अन्यथा समाधी ग्रहण करूंगा।

पू. आचार्य भगवन् कहते हैं यह बाह्य ब्रह्मचर्य की क्रिया है। मुनिजन स्त्रियों के आसन पर नहीं बैठते, मंदिर की चटाईयों पर भी नहीं बैठते। एक संत के उपकरण का उपयोग भी दूसरे संत नहीं करते, अपने-अपने उपकरणों व आसन आदि का प्रयोग करते हैं। एक-दूसरे से १ हाथ की दूरी पर शयन करते हैं, चलते समय एक दूसरे का शरीर या उपकरण नहीं टकराना चाहिए यह सब ब्रह्मचर्य में विशुद्धि बढ़ाने के उपाय हैं। संत जन किसी की शादी-विवाह नहीं कराते, जिनका आचार-विचार ठीक नहीं है ऐसी स्त्रियों से बातचीत नहीं करते। अनङ्ग क्रीडा व स्त्री कथा के त्यागी होते हैं उनके मनोहर अंग नहीं देखते क्योंकि अंग ही विकार उत्पन्न करते हैं। परंतु यह स्थूल दृष्टि है जब सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं तो पू. आचार्य कुंद कुंद देव तो ब्रह्मचर्य व्रत की उत्कृष्टता बताते हुए कहते हैं - जो स्त्रियों के हाव-भाव से युक्त सर्वांग शरीर को देखता हुआ भी विकृत चित्त नहीं होता वही उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का धारी है।

कहा जाता है मन ही बहुत ऊँचा व नीचा होता है। अपने मन को High quality का बनाइए Low quality का नहीं। क्योंकि यदि मन ही विकृत है तो इंद्रियाँ आध्यात्मिक धर्म प्रवचन -

भी विकृत हो जायेगी। मन यदि ऊँचा है तो पत्थर में भी भगवान नजर आयेंगे, नर में भी नारायण दिखेगा, स्त्री में भी पुरुष (आत्मा) दिखेगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा ब्रह्मचर्य मात्र तन से ही नहीं अपितु मन से होना चाहिए।

जिणणाह महिज्जइ मुणि पणमिज्जइ दहलक्खणु पालियइ णिरु ।

खेमसीहं सुय भव्व विणयजुय होलुव मण इह करहु थिरु ॥ ७ ॥

जिसकी महिमा जिनेन्द्र देव ने गायी है और जिस दशलक्षण धर्म का मुनिजन पालन करते हैं, नमस्कार करते हैं हे ज्ञानी! अगर तुम अपनी क्षेम कुशल चाहते हो तो विनय से युक्त होकर दस प्रकार के धर्म को उत्तम प्रकार से पालन करो।

जो दस धर्मों में श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करता है उसके विषय में एक दार्शनिक ने कहा है

"Celibate is the member of God"

अर्थात् ब्रह्मचारी भगवान के परिवार का सदस्य है। ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा बताते हुए पू. आचार्य महाराज कह रहे हैं-

तेल्लोक्का विडहणो कामगो विसय रुक्ख पज्जलिओ ।

जोव्वण तणिल्लचारी जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ॥ भ.आ.१११५

कामाग्नि विषय रूपी वृक्षों का आश्रय लेकर प्रज्ज्वलित हुई है त्रैलोक्य रूपी वन को यह मधग्नि जलाने को उद्यत हुआ है। परंतु तारुण्य रूपी तृण पर संचार करने वाले जिन महात्माओं को वह जलाने में असमर्थ है वे महात्मा धन्य हैं। पूज्य पू. आचार्य सकलकीर्ति महाराज अपने सुभाषित रत्नावली ग्रंथ में कहते हैं-

ब्रह्मचर्यमपि पालय सारं धर्मसार गुणदं भवतारम् ।

स्वर्ग मुक्तिगृहप्रापणहेतु दुःखसागर विलङ्घन सेतुम् ॥ १३४ ॥

हे भव्य आत्मन्! तू ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर जो सारयुक्त है, धर्म के श्रेष्ठ गुणों को देने वाला है, संसार से तारने वाला है स्वर्ग और मुक्ति रूपी गृह की प्राप्ति का हेतु है, दुःख रूपी सागर से पार होने के लिए पुल है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत महिमा को जानकर हे भव्य! तुम इसे धारण करो। यह ब्रह्मचर्य ही संपूर्ण सुखों को करने वाला है तथा अनुक्रम से निर्वाण की प्राप्ति का हेतु है।

“बोलिए चंद्रप्रभु भगवान की जय“

“आओ मनाएँ क्षमावाणी”

कोहुपत्तिस्स पुणो बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं ।

ण कुणदि किंचिवि कोहं तस्स खमा होदि धम्मोत्ति ।। बा.पे.

क्रोध का बाह्य निमित्त उपस्थित होने पर भी क्रोध को उत्पन्न नहीं होने देना ‘उत्तम-क्षमा’ है।

महान्तः सन्ति सर्वेऽपि क्षीण कायास्तपस्विनः ।

क्षमावन्त मनुख्याताः किंतु विश्वे ही तापसाः ।। कु.का.

उपवास करके तपश्चर्या करने वाले निःसंदेह महान हैं, पर उनका स्थान उन लोगों के पश्चात् ही हैं, जो अपनी निंदा करने वालों को भी क्षमा कर देते हैं।

कोहाणलु चुक्कउ होउ गुरुक्कउ जाइ रिसिंदहि सिट्ठइं ।

जगताइं सुहंकुरु धम्म महातरु देइ फलाइं सुमिट्ठइं ।। र.धु.

हे भव्य ! तुम क्रोधानल का त्याग कर महान बनो ऐसा ऋषिवरों ने उपदेश दिया है। शुभ को करने वाला यह क्षमा धर्म रूपी महातरु संसार को मीठे फल प्रदान करता है।

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे ।

मित्ती मे सव्व भूदेसु, बैरं मज्झं ण केण वि ।।

संसार के सभी प्राणी मुझे क्षमा करें, मेरा सभी के प्रति क्षमा भाव है, मेरी सभी प्राणियों से मित्रता है किसी से भी बैर नहीं।

‘सत्यपि प्रतिकार सामर्थ्येऽपकार सहनं क्षमा ।’

प्रतिकार करने की सामर्थ्य होते हुए भी दूसरों के अपकार को सहन करना वास्तविक क्षमा है।

जहाँ क्षमा वहाँ सुख, जहाँ क्रोध वहाँ दुख

जहाँ क्षमा वहाँ समता, जहाँ क्रोध वहाँ विषमता

जहाँ क्षमा वहाँ मित्रता, जहाँ क्रोध वहाँ शत्रुता

जहाँ क्षमा वहाँ धैर्य, जहाँ क्रोध वहाँ अधीरता

जहाँ क्षमा वहाँ सहिष्णुता, जहाँ क्रोध वहाँ असहिष्णुता

जहाँ क्षमा वहाँ हितैषी भाव, जहाँ क्रोध वहाँ अहित के भाव

जहाँ क्षमा वहाँ सत्य, जहाँ क्रोध वहाँ असत्य
 जहाँ क्षमा वहाँ सम्मान, जहाँ क्रोध वहाँ अपमान
 जहाँ क्षमा वहाँ आत्मीयता, जहाँ क्रोध वहाँ अलगाव
 जहाँ क्षमा वहाँ कोमलता, जहाँ क्रोध वहाँ कठोरता
 जहाँ क्षमा वहाँ सहयोग, जहाँ क्रोध वहाँ असहयोग
 जहाँ क्षमा वहाँ पर प्रशंसा, जहाँ क्रोध वहाँ पर निंदा
 जहाँ क्षमा वहाँ आत्मनिंदा, जहाँ क्रोध वहाँ आत्मप्रशंसा
 जहाँ क्षमा वहाँ करुणा, जहाँ क्रोध वहाँ कठोरता
 जहाँ क्षमा वहाँ संघटन, जहाँ क्रोध वहाँ विघटन
 जहाँ क्षमा वहाँ शांति, जहाँ क्रोध वहाँ अशांति
 जहाँ क्षमा वहाँ ज्ञान, जहाँ क्रोध वहाँ अज्ञान

भव्य बंधुओं! पिछले दस दिनों से हम निरंतर एक-एक गुण को एक-एक धर्म के रूप में निज आत्म घट में उतारते जा रहे हैं। आज का पावन दिन 'क्षमावाणी' का है। दस दिनों में हमने जो भी प्रभु-भक्ति, आराधना, तपस्या की है और उसके द्वारा जो परिणाम निर्मल किये हैं आज उसकी परिपूर्णता हम 'क्षमावाणी पर्व' से करेंगे। यद्यपि 'क्षमावाणी-पर्व' का उल्लेख सिद्धान्त ग्रंथों में नहीं मिलता तथापि परंपरा से चला आ रहा है इसलिए इस पर्व को मनाया जाता है।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं कि ज्ञानी जन तो हर क्षण हर पल क्षमावाणी मनाते हैं। यदि आप हर समय नहीं तो पर्व के दिनों में अष्टमी व चतुदशी को क्षमावाणी मना सकते हैं। यदि वह भी न हो सके तो पक्ष में और वह भी न हो सके तो चातुर्मास के अंत में मनाना चाहिए और वह भी न हो सके तो भाद्र पक्ष के इस महिने में साल में १ बार तो अवश्य ही मना लेना चाहिए।

'क्षमावाणी-पर्व' अंतस के कालुष को धोता है मन को निर्मल कर देता है। क्षमा शब्द जैसे ही सुनाई देता है मन आनंद और हर्ष से भर जाता है, जलती हुई क्रोध की अग्नि शमन हो जाती है। खमा आत्मा का गुण है, सज्जनता की पहचान है, महापुरुष का वरदान है, महापुरुषों का आभूषण है, यदि क्षमा महापुरुषों का आभूषण है तो क्रोध आत्मा का दूषण है, अपराध है। क्रोध में अशांति, दुःख, पीडा व परेशानी है, जब भी व्यक्ति के अंदर क्रोध होता है तो वह पीड़ा तथा बेचैनी उत्पन्न करता है।

क्रोध का जन्म अज्ञानता में होता है, ज्ञान की अवस्था में नहीं क्योंकि ज्ञान की वर्षा जहाँ होती है वहाँ क्रोध की अग्नि जल नहीं पाती। यदि माचिस गीली हो तो तीली को उस पर कितना भी घर्षण करें तो भी वह जल नहीं सकती, ईंधन गीला है तो वह जलता नहीं है। अग्नि वहाँ जलती है जहाँ शुष्कता होती है। जहाँ ज्ञान रूपी जल का अभाव होता है वहाँ कोमलता, मुलायमपना नहीं होता। जैसे मिट्टी जब शुष्क होती है तो टूट तो जाती है लेकिन मुड़ नहीं पाती।

बंधुओं! जहाँ क्षमा रूपी जल होता है वहाँ नम्रता होती है। क्रोध पत्थर की तरह होता है। विश्व के पदार्थों में नम्रता आ सकती है लेकिन पत्थर में ऋजुता नहीं आती है, पत्थर की तरह क्रोध को, अनंतानुबंधी की उपमा दी गई है, जब अनंतानुबंधी कषाय उत्पन्न होती है तो व्यक्ति मिटना तो पसंद करता है लेकिन झुकना नहीं। वह बाँस की तरह होता है जो वायु के झोके से धराशायी हो जाता है। परंतु जब क्रोध का अभाव होता है तो वहाँ क्षमा होती है।

यूनान देश के बहुत बड़े विचारक 'सुकरात' का नाम आज भी दुनिया में सुप्रसिद्ध है, वे कभी-कभी अपनेक विचारों में इतना डूबे रहते थे कि उन्हें खान-पान का भी भान नहीं रहता था। घर पहुँचते-पहुँचते उन्हें देर हो ही जाती थी। उनकी पत्नी घर बैठी-बैठी उनकी प्रतीक्षा में थक जाती थी। जब वे आते तो उनकी पत्नी कहा करती, 'आप समय पर आ जायें तो भोजन आदि से समय पर निवृत्त हो जायें। सुकरात कहते, 'अच्छा, मैं ध्यान रखूंगा, समय पर आने का प्रयत्न करूंगा।'

एक दिन की बात है, वे अपनी मित्र मण्डली के साथ चिंतन-मनन में इतने लीन हो गये कि घर बहुत देरी से पहुँचे। उनकी पत्नी कलहकारिणी थी। बात-बात पर झगड़ा करती थी। जब उसे गुस्सा आता तो वह विवेक भ्रष्ट हो जाती थी। एक दिन सुकरात को देरी से आया देखकर उसकी आँखों में खून प्रवाहित हुआ, अधरावली में कंपन बढ़ा। वह जोर-जोर से गरजने लगी। खरी-खोटी सुनाने लगी। सुकरात मौन रहकर उसकी झिड़कियाँ सुनते रहे और भोजन करते रहे। भोजन करने के उपरांत उन्होंने शांत भाव से पत्नी की ओर देखा। इससे उसका गुस्सा दुगुना हो गया, मानों तप्त तवे पर पानी डाला हो। वह मुंह से फिर अनर्गल शब्दों का प्रयोग करने लगी। कृत्य-अकृत्य सब कुछ भूल।

सुकरात ने सोचा - इसका गुस्सा शांत नहीं हो रहा है, अब यहाँ रहना उचित नहीं। वे घर से चले। ज्यों ही बाहर जाने लगे त्यों ही उसकी पत्नी हारकर और भी

झल्लाई। मन का वेग बढ़ने लगा। थरथराने लगी। अपने वश में न रह सकी। झट उठी, रसोई के बाहर आयी। सफेदी करने के लिए घड़े में पड़े हुए चूने के घोल को उन पर उंडेल दिया। फिर भी सुकरात ने क्षमा को नहीं छोड़ा। उस पर तनिक भी गुस्सा नहीं किया। प्रत्युत शांत भाव से हंसकर कहा - 'मैंने सुना था, पहले बादल गरजते हैं फिर बरसते हैं। तुम जिस समय गरज रही थी तब मैं सोच रहा था कि अब बरसोगी भी। खैर, इतने में ही काम बन गया। बिजली तो नहीं गिरी। सुकरात का यह रहस्य भरा उत्तर सुनकर वह पानी-पानी हो गई और सुकरात के चरणों में पड़ गई, गुस्सा शांत हो गया और अपने दुष्कृत्य पर पछताने लगी।

क्षमा वीरों का भूषण है। क्षमावान के आगे दुश्मन भी झुक जाता है अतः हर व्यक्ति को अपने जीवन में अधिक-अधिक क्षमाभाव धारण करना चाहिए।

वीरों का भूषण क्षमा, क्षमा हृदय का घर।

क्षमावान के सामने, अवनत है संसार।।

जहाँ क्षमा होती है वहाँ कीमत वस्तु की नहीं व्यक्ति के परिणामों की होती है।

बंधुओं! एक बार राजप्रसाद जी के दफ्तर में एक कर्मचारी काम कर रहा था। उनको टेबिल पर काँच की एक कलम रखी थी वह कलम राजेन्द्र प्रसाद जी को किसी विदेश के राष्ट्रपति ने भेंट की होगी, काफी मँहगी थी कला से युक्त थी, उसमें बड़ी विशेषता थी और वह कलम कर्मचारी के हाथों गिरने से धोखे से टूट गई। वह बड़ा परेशान अब क्या करूँ? वह सोचता है मैं भाग जाऊँ, तो भी पकड़ा जाऊँगा इसी ऊदोड़बुन में लगा रहा, फिर सोचता है मैं झूठ बोल दूँ कि कलम यहाँ थी नहीं। फिर मन में विचार आया, मैंने जिसका नमक खाया उससे झूठ नहीं बोलूँगा। वह सोचता है यदि मैं पकड़ा गया तो साहब जी मुझे दण्ड देंगे क्योंकि मैंने अपराध किया है। फिर वह सोचता है आत्महत्या कर लूँ इसमें ज्यादा परेशानी नहीं होगी, वह सोचता है यह भी स्वामी के साथ धोखा होगा। वह इन्हीं विचारधाराओं में डूबा था तभी राजेन्द्र प्रसाद जी आ गये। कुर्सी पर बैठे और देखा कि कर्मचारी की आँखों में आँसू हैं लेकिन अभी कर्मचारी ने राजेन्द्र प्रसाद जी को नहीं बल्कि राजेन्द्र प्रसाद जी ने उसे देखा था। वे सोचते हैं यह विश्वास पात्र कर्मचारी है आज इसकी आँखों में आँसू है, उदास है कोई पीड़ा है।

बंधुओं! दूसरे के आँसुओं व पीड़ा को अपनी पीड़ा समझना महान पुरुषों की महानता है। राजेन्द्र प्रसाद जी उसके पास जाते हैं सिर पर हाथ रखते हैं और पूछते हैं

क्या बात है क्यों दुःखी हो रहे हो ? इतना पूछना ही था कि वह कर्मचारी फूटफूट कर रोने लगा और उनके चरणों में गिर गया। राजेन्द्र प्रसाद जी पुनः पूछते हैं - बताओ क्या हुआ ? कर्मचारी कहता है - बाबूजी मुझसे अपराध हो गया, बड़ी गलती हो गई और पुनः रो पड़ा तथा कलम के टूटे टुकड़े राजेन्द्र प्रसाद जी को दिखा दिये। राजेन्द्र प्रसाद जी ने उसके हाथ से वे टुकड़े लिये और खिड़की से बाहर फेंक दिये। और बोले - कलम ही तो थी, वह तो अवश्य फूटनी ही थी तुम्हारे हाथ से फूटी यदि मेरे हाथ से फूट जाती हो ? वस्तु एक दिन नाश को प्राप्त होती है।

बंधुओं ! जब अंतरमन क्षमा से आपूरित होता है तो वस्तु महत्व नहीं रखती व्यक्ति की भावनाएँ महत्वशाली होती हैं। कहा भी है-

Execuse is very great virtue, by excuse we defete the enemy of Anger.

क्षमा एक बहुत बड़ा महान गुण है जिसके द्वारा हम क्रोध रूपी शत्रु को परास्त कर सकते हैं। पू. आचार्य कुंदकुंद देव ने बारस अणुवेकखा में क्षमा के स्वरूप को बताते हुए कहा है-

कोहुपत्तिस्स पुणो बहिरंगं जदि हवेदि सक्खादं ।

ण कुणदि किंचिवि कोहं तस्स खमा होदि धम्मोत्ति ।।

क्रोध का बाह्य निमित्त आने पर भी क्रोध उत्पन्न न होने देना उत्तम क्षमा है। क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध नहीं करना बहुत ऊँची साधना है। क्रोध का प्रतिकार क्रोध से करना सहज है इसमें कौन सी बहादुरी है। हर कोई क्रोध के आवेग में बहकर क्रोधाविष्ट हो सकता है क्रोध के क्षणों में क्षमा धारण करना ही सच्चा पुरुषार्थ है।

महर्षि अरविंद के पास एक दिन एक फ्रांसिसी युवक आया। युवक मन का सरल पर स्वभाव से उग्र था। उसके हृदय में हमेशा क्रोध का तूफान मचा रहता था। एक बार वह महर्षि अरविंद के पास पहुँचा। महर्षि जी उसके स्वभाव को समझ गये। महापुरुषों की यह विशेषता होती है कि व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार ही उसे उपदेश देते हैं। महर्षि जी ने कहा - “जरा सोच कर बताओ, तुम जैसे हष्ट-पुष्ट लड़के के लिए सबसे कठिन काम कौन सा है ? थप्पड़ के बदले थप्पड़ लगाना या मारने वाले साथी पर जवाबी हमला करना, अथवा उसी समय अपनी मुट्टी को जेब में डाल लेना।”

युवक बोला- “अपनी मुट्टी को जेब में डालना।”

महर्षिजी बोले- “तुम जैसे तेजस्वी युवक के लिए सरल काम उचित है या कठिन” ?
कुछ क्षण सोचकर युवक ने कहा- “कठिन काम ही उचित है।”

महर्षि जी ने कहा “बहुत अच्छा, अब तुम ऐसा ही करने का प्रयत्न करना।”

कुछ दिन बाद वह युवक महर्षि जी के चरणों में और प्रसन्नता पूर्वक बोला-
“महर्षि जी ! मैं सबसे कठिन काम करने में सफल हो गया हूँ।”

महर्षि जी ने पूछा- ‘वह कैसे’ ? तो वह बोला- “कारखाने में मेरे साथ काम करने वाले एक युवक ने जो अपने बुरे स्वाभाव के लिए प्रसिद्धि है, क्रोध में आकर मुझे पीटा। क्योंकि वह जानता था कि मैं साधारणतया क्षमा नहीं करता, मुझमें ताकत भी है, अतः वह अपनी रक्षा के लिए तैयार हो गया। ठीक उसी समय मुझे आपकी बात याद आ गयी। वैसा करना मुझे कठिन लगा फिर भी मैंने अपनी मुट्टी जेब में डाल ही ली। जैसे ही मैंने ऐसा किया, मेरा गुस्सा न जाने कहाँ गायब हो गया। उसका स्थान साथी के प्रति दया ने ले लिया। मैंने तब अपना हाथ साथी की ओर बढ़ाया, एक क्षण को वह मुझे देखता रहा, एक शब्द भी बोल न सका। फिर शीघ्रता से मेरे हाथ की ओर लपका और द्रवीभूत होकर कहा- “आज से तुम मुझसे जो चाहो करा सकते हो। अब मैं तुम्हारा मित्र बन गया हूँ।” क्षमा के विषय में कहा भी है-

‘सत्यपि प्रतिकार सामर्थ्येऽपकार सहनं क्षमा’ ।

प्रतिकार करने की सामर्थ्य होते हुए भी दूसरों के अपकार को सहन करना वास्तविक क्षमा है। कुरल काव्य में क्षमा के प्रति बहुत अच्छी बात कही है-

महान्तः सन्ति सर्वेऽपि क्षीण कायास्तपस्विनः ।

क्षमावन्त मनुख्याताः कित्तु विश्वे हि तापसाः ॥

उपवास करके तपश्चर्या करने वाले निःसंदेह महान हैं, पर उनका स्थान उन लोगों के पश्चात् ही है, जो अपनी निंदा करने वालों को क्षमा कर देते हैं।

पू. आचार्य महाराज कहते हैं- “क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी क्रोध न करें तो बहुत अच्छी बात है। यह संभव न हो रहा हो तो कम से कम बैर की गाँठ तो मत बाँधें।”

“क्रोध - बैर का अचार या मुरब्बा है” ऐसी सूक्ति सुभाषित में मिलती है।

बैर के विषय में पूजा की पंक्तियों में कहा है-

यह बैर महादुःखदायी है यह बैर न बैरा मिटाता है।

यह बैर निरंतर प्राणी को भव सागर में भटकता है।।

व्यक्ति बैर तो बाँध लेता है परंतु दुष्परिणाम पर विचार नहीं करता, बैर से कभी बैर नहीं मिटता अपितु बढ़ता ही जाता है। और वास्तविकता में दूसरे का नहीं अपितु स्वयं का अहित करने वाला है। बैर को धारण करने वाला भव-भव में भटकता है और क्षमा को धारण करने वाला भव से पार हो जाता है।

कमठ ने लगातार दस भवों तक भगवान पार्श्वनाथ के जीव से बैर रखा परंतु पार्श्वनाथ भगवान उसे हर भव में क्षमा प्रदान करते रहे इसका परिणाम यह निकला कि कमठ हर भव में दुर्गति को प्राप्त हुआ तथा पार्श्वनाथ भगवान हर भव में अच्छी सुगति को प्राप्त करते हुए अंतिम भव में मोक्ष को प्राप्त हुए। बैर से दूसरे का अहित हो या न हो परंतु हमारा स्वयं का अहित तो नियम से हो जाता है। बैर यदि उत्पन्न हो जाए तो क्षमाभाव धारण कर शीघ्र उसका त्याग कर देना चाहिए अन्यथा वह आपको उठाकर मिथ्यात्व रूपी गड्ढे में पटक देगा। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर क्षमा कैसे जीवन में आये तो इसका उपाय यह है कि जब भी क्रोध आये-

- (१) स्थान परिवर्तन कर दीजिए
- (२) समय परिवर्तन कर दीजिए अथवा
- (३) मौन धारण कर लीजिए।

एक समय की बात है। एक महिला को बहुत गुस्सा आता था। उसका स्वभाव बड़ा तेज, आँखे हरदम लाल रहती थी। उसकी सास कुछ कह ही नहीं पाती और वह बंदर की तरह उछलने लगती फलतः घर में कलह कदाग्रह होता रहता था। सर्वत्र अशांति, सब परेशान थे अब क्या करें? इसे कहाँ छोड़ दे? सुख से खाना भी नहीं खाने देती, सुख की नींद सोने भी नहीं देती, ऐसी कर्कश महिला से कैसे छुटकारा हो, हर वक्त कौवे की भाँति क्रां-क्रां करती रहती है।

पास में एक समझदार पड़ोसी रहता था। रोगों की चिकित्सा करने में वह बड़ा दक्ष था। अनुभवी था। सुख-दुःख में सबकी सहायता करता था। वह बहुत एक दिन उस चिकित्सक के घर जा पहुँची। हाथ जोड़कर बोली- पिताजी! बड़ी समस्या है घर में कदाग्रह होता रहता है। लड़ाईयाँ भी चलती रहती है। मैं परेशान मेरी सास परेशान, घर के सारे सदस्य परेशान, घर का सारा वातावरण बिगड़ रहा है। आप एक कुशल चिकित्सक हैं। कृपया मेरी चिकित्सा प्रारंभ करें। मुझे कोई ऐसी दवा दें, जिससे मेरा क्रोध शांत हो जाए। व घर का वातावरण शांत हो जाए।

अनुभवी वैद्य ने कहा- बेटी! एक दवा देता हूँ। पर उसका पथ्य कड़ा है। अगर तू ध्यान रखेगी तो तेरा सारा रोग शांत हो जायेगा। वह बोली- महोदय! आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूंगी। वैद्य अंदर कमरे में गया, बोतल लाया और बोला- पुत्री! ये लो दवा, इससे तुम्हारी सारी बीमारी दूर हो जायेगी। जिस समय तुम्हें गुस्सा आये, यह दवा ले लेना किंतु पथ्य का ध्यान रखना। पंद्रह मिनट तक इस दवा को मुँह में रखना पड़ेगा, जिससे अच्छी तरह से पूरी लार उसके साथ मिल जाए। यह दवा तभी काम करेगी जबकि पंद्रह मिनट तक मुँह में इसे घुमाती रहोगी। यह ऐसी कीमती दवा है कि पहले दिन से ही अपना प्रभाव दिखायेगी।

विनयपूर्वक वह महिला बोली- वैद्य जी! आपने मुझ पर बहुत अच्छी कृपा की। पथ्य का ध्यान रखूंगी। दवा लेकर वह अपने घर चली गई। प्रतिदिन की भाँति झगड़ा होना तो स्वभाविक ही था। ऐसा क्रम बना हुआ था कि सास को बहू से व बहू को सास से लड़े बिना शांति ही नहीं मिलती थी। परस्पर झगड़ा आरंभ हुआ। किसी तुच्छ बात पर सास को गुस्सा आया। बहू भला कब चूकने वाली थी परंतु आज तो वह दवा ले कर आयी थी सोचा दवा खा लूं। भीतर गई दो गोली मुँह में डाल कर वापिस बाहर आ गई, मुँह भरा था। बोले तो कैसे बोले। और वैद्य का बताया पथ्य (१५ मिनट मौन) याद आ गया। अब तो १५ मिनट तक कुछ नहीं बोली। सास का गुस्सा पांच-सात मिनट में ही शांत हो गया। गुस्सा तब बढ़ता है जब ईंधन मिले। ईंधन न मिले तो आग शीघ्र बुझ जाती है सास भी प्रति-उत्तर न मिलने से बोलती-बोलती चुप हो गई। सारा झगड़े समाप्त हो गये। वह दौड़ी दौड़ी वैद्य जी के पास गई और बोली- वैद्य जी कमाल हो गया आपकी दवा ने तो एक ही दिन में अपना असर दिखाना शुरू कर दिया अब तो कोई समस्या नहीं घर में मानो स्वर्ग ही उतर आया हो।

बंधुओं! मौन गुस्से की अचूक दवा है। मौन लेने से सारे लड़ाई-झगड़े स्वयमेव समाप्त हो जाते हैं 'मौन' आदि जो कारण हमने देखे ये जीवन में क्षमा की उत्पत्ति के मूल हेतु हैं। रइधुई कवि भी कहते हैं-

कोहाणलु चुक्कउ होउ गुरुक्कउ जाइ रिसिंदहि सिट्टइं।

जगताइं सुहंकुरु धम्म महातरु देइ फलाइं सुमिट्टइं।। ७।।

हे भव्य! तुम क्रोधानल का त्याग कर महान बनो, ऐसा ऋषिवरों ने उपदेश दिया है। शुभ को करनेवाला यह क्षमा धर्म रूपी महातरु संसार को मीठे फल प्रदान करता है।

संत जन जीवन में स्वयं क्षमा धारण करते हैं इसीलिए प्राणी मात्र के लिए क्षमा

का उपदेश देते हैं। प्राणी मात्र के प्रति उनका हृदय दया व करुणा से भरा होता है वे अहर्निश यही भावना भाते हैं-

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।

मित्ती मे सव्व भूदेसु, बैरं मज्झं ण केण वि।।

अर्थात् संसार के संपूर्ण प्राणी मुझे क्षमा प्रदान करें सभी के प्रति मेरा क्षमा भाव रहे अर्थात् मैं सभी को क्षमा प्रदान करता हूँ। जगत के संपूर्ण प्राणियों से मेरी मैत्री है किसी से भी बैर नहीं।

ऐसे पवित्र विचार उसी के अंदर उठ सकते हैं जिसका हृदय, मन पवित्र हो। वे संत जन अत्यंत पवित्र मन वाले होते हैं। अतः क्षमा के अजस्त्र स्तोत्र उनके हृदय से प्रवाहित होते रहते हैं।

आज के पावन पुनीत दिवस पर हमें यही शिक्षा ग्रहण करनी है कि हम सच्ची क्षमा जीवन में धारण करें सारे बैर विरोधों को समाप्त कर दें। जो व्यक्ति अपने जीवन में इस व्यवहारिक क्षमा को धारण कर लेता है वही एक दिन निश्चय क्षमा को प्राप्त कर पाता है “निश्चय क्षमा” - अर्थात् आत्मा का विभाव रूप परिणत न हो, सदैव स्वभाव की ओर ही अभिमुख होना।

तो आप सभी व्यवहारिक क्षमा के साथ-साथ एक दिन निश्चय क्षमा को धारण करें व अपनी आत्मा का कल्याण करें तभी आपका ‘क्षमावाणी पर्व’ को मनाना सार्थक होगा। और एक ही अनूगंज अंदर से निकलेगी।

**भूल से अपराध मुझसे हो गया हो गर कोई,
भूल जाना तुम उसे, भूल मेरी जान कर।
दिल दुःखा हो चोट पहुँची हो अगर जाने अनजान,
तो भेंट करता हूँ तुम्हें मैं क्षमा फूलों का हार।।
छोटा सा जीवन है भाई चार दिन को हम मिलें,
फिर करे तकरार क्यों, ये बात मेरा मन कहें।
तुम भी भूलों, मैं भी भूलूँ हम सभी को भूलना है,
जो नहीं निज भाव मेरा, उसमें क्या फिर फूलना है।।
भूल से अपराध - - -**

“बोलिए भगवान महावीर स्वामी की जय”

धर्म

- (1) Religion is an art not trouble.
रिलीजन इज एन आर्ट नॉट ट्रबल
धर्म बला नहीं, कला है।
- (2) Religion happens but is not done.
रिलीजन हैपन्स बट नॉट डन
धर्म किया नहीं जाता, हो जाता है।
- (3) Mercy is not of religion happens automatically by influence of soul.
मर्सी इज नॉट ऑफ रिलीजन हैपन्स ऑटोमेटिकली बाय इनफ्लूएन्स ऑफ सॉल।
आत्म प्रभावन से धर्म प्रभावना स्वयमेव हो जाती है।
- (4) Mercy is root of religion.
मर्सी इज रुट ऑफ रिलीजन.
दया धर्म की जड़ है।

उत्तम क्षमा धर्म

- (5) Religion is subject of conduct.
रिलीजन इज सब्जेक्ट ऑफ कन्डक्ट
धर्म आचरण का विषय होता है।
- (6) End of Anger gives birth to forgive.
एण्ड ऑफ ऐंगर गिव्स बर्थ टू फॉरगिव.
क्रोध का अन्त क्षमा को जन्म देता है।

उत्तम मार्दव धर्म

- (7) The pillar of proud is a speed breaker of life.
द पिलर ऑफ प्राउड इज स्पीड ब्रेकर ऑफ लाइफ.
मान का शिखर जीवन का गति अवरोधक है।

- (8) Don't be proud but be proud off.
डोन्ट बी प्राउड बट बी प्राउड ऑफ.
अभिमान नहीं स्वाभीमान करो।

उत्तम आर्जव धर्म

- (9) Proud is not only proud but seed of cancer too.
प्राउड इज नॉट ऑनली प्राउड बट स्पीड ऑफ कैंसर टू.
अहंकार, अहंकार ही नहीं कैंसर का बीज भी है।
- (10) Don't be froud for money but do religlion.
डोन्ट बी फ्राउड फॉर मनी बट टू रिलीजन
धन का अभिमान मत करो धर्म करो।
- (11) A deceitful person can never be independent.
ए डिसीटफुल परसन केन नेवर बी इनडिपेन्डेन्ट.
मायाचारी व्यक्ति कभी स्वाधीन नहीं हो सकता।

उत्तम सत्य धर्म

- (12) Truth is life of a Monarch.
ट्रुथ इज लाइफ ऑफ ए मौनार्क.
राजा का प्राण सत्य होता है।
- (13) Theory and law are the touch stone of truth.
थ्योरी एण्ड लॉ आर द टच स्टोन ऑफ ट्रुथ.
सिद्धान्त और न्याय सत्यता की कसौटी है।
- (14) Truth is our kingdom. Untruth is our village.
ट्रुथ इज अवर किंगडम अनट्रुथ इज अवर विलेज.
सत्य हमारा साम्राज्य है असत्य हमारा गाँव।

- (15) Truth is sensation not the substance.
 टुथ इज सेन्सेसन नॉट द सब्सटेन्स.
 सत्य एक अनुभव है वस्तु नहीं।
- (16) Ignorance of truth is insult of our God.
 इग्नोरेन्स ऑफ टुथ इज इनसल्ट ऑफ अवर गॉड.
 सत्य की उपेक्षा अपने परमात्मा का निरादर है।
- (17) Truth is the speech of inward purity.
 टुथ इज द स्पीच ऑफ इनवर्ड प्यूरिटी.
 सत्य अन्तरात्मा की शुद्धि की वाणी है।

उत्तम संयम धर्म

- (18) No self control is nothing beatitude.
 नो सेल्फ कन्ट्रोल इज नथिंग बीटिट्यूड.
 संयम नहीं, तो मुक्ति नहीं।
- (19) Self restraint is the key to eternal happiness.
 सेल्फ रिस्ट्रेन्ट इज द की टू इटर्नल हैप्पीनेस.
 आत्म-संयम शाश्वत सुख की कुंजी है।
- (20) To be excite with consiousness is restraint.
 टू बी एक्साइट विथ कॉन्ससनेस इज रिस्ट्रेन्ट.
 होश के साथ जोश में आना है संयम।
- (21) Brake of life vehicle is restrain.
 ब्रेक ऑफ लाईफ वेहिकल इज रिस्ट्रेन.
 जीवन रूपी कार में संयम रूपी ब्रेक होना चाहिए।

उत्तम तप धर्म

- (22) Mortification is done for self welfare not for wealth and prosperity.
मॉर्टीफिकेशन इज डन फॉर सेल्फ वेल्फेअर नॉट फॉर वेल्थ एण्ड प्रास्पेरिटी.
तप आत्म-कल्याण के लिए किया जाता है, ऋद्धि-सिद्धि के लिए नहीं।

उत्तम आकिंचन धर्म

- (23) Much coin much care.
मच क्वाइन मच केअर.
जितना धन उतनी चिंता।

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

- (24) The celibacy is beautiful enjoyment of consious.
द सैलिबैसी इज ब्यूटीफुल एन्ज्वायमेंट ऑफ कान्सस.
ब्रह्मचर्य चेतन का सुंदर भोग है।
- (25) Our decoration is a net for others.
अवर डेकोरेशन इज ए नेट फॉर अदर्स.
हमारा श्रृंगार दूसरे के लिए जाल है।
- (26) Celibacy is the best among all the vows in the world.
सैलिबैसी इज द बेस्ट अमंग ऑल द वोस इन द वर्ल्ड.
ब्रह्मचर्य अथवा शील संसार में समस्त व्रतों में सर्वश्रेष्ठ है।
- (27) The knowledge can never be borrowed.
द नॉलेज केन नेवर बी बॉरोड.
ज्ञान कभी उधार में नहीं मिलता।

क्षमा

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ वहाँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ क्षमा तहाँ आप ॥
क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात ।
कहा विष्णु का घट गया, भृगु ने मारी लात ॥
क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल है ।
न कि उसे जो दन्तहीन, विषहीन विनीत सरल है ॥

मार्दव

बड़े बढाई न करें, बड़े न बोले बोल ।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल ॥
अहंकार के पतन का, बहुत बड़ा संदेश ।
रावण जैसे मानी गये, कहो कौन से देश ॥
लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर ।
चींटी ले शक्कर चढ़ी, हाथी के सिर धूर ॥
बकरा जो मैं-मैं करे, अपनी खाल खिचाय ।
मैना जो मैं ना कहे, दूध भात नित खाय ॥
नमन नमन में भेद है, नमन न सरीखा जान ।
दगाबाज दुगना नमे, जैसे चीता चोर कमान ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥
मान बढाई कारणे, क्यों मर रहा मूढ़ ।
मरकर हाथी होयेगा, धरती लटके सूढ़ ॥
मान महाविष रूप करहि, नीच गति जगत में ।
कोमल सदा अनूप, सुख पावे प्राणी सदा ॥

आर्जव

मन जाता है जान दे, तू मत जाये शरीर ।
उतरी धरी कमान को, कहा करेगा तीर ॥
माया छिपाये न छिपे, छिपे तो मोटा भाग ।
दाबी दूबी कब रहे, रुई लपेटी आग ॥
मन मैला तन उजरा, या बगुला की टेक ।
यासे तो कौआ भला, भीतर बाहर एक ॥
अधिक सरलता सुख नहीं, देखो विपिन मंझार ।
सीधे विरवा कट गये, टेड़े खड़े हजार ॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुर्गति त्याग सुगति उपजावे ।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सो करिये ।
करिये सरल तिहुयोग अपने, देख निर्मल आरसी ।
मुख करे जैसा लखे तैसा, कपट प्रीति अंगार सी ।
मायाचारी जीव जगत के, निशदिन पाप कमाते हैं ।
बगुला भक्ति दिखा-दिखा कर, निशदिन एब कमाते हैं ।
माया ठगनी से ठगा, यह सारा संसार ।
जिसने माया को ठगा, वह पहुँचा भव के पार ।

शौच

तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही ।
धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देह सों ।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में ॥
गोधन गजधन बाजधन और रतन धन खाल ।
जब आबे संतोष धन, सब धन धूलि समान ॥
उत्तम शौच लोभ परिहारी, संतोषी गुण रतन भण्डारी ।
तन की भूख तनिक है, एक पाव या सेर ।
मन की भूख अपार है, चाहे मिले सुमेर ॥

इच्छा दुख की मूल है, वह अवगुण की खान ।
 इच्छा तज तप को धरो, पावे केवलज्ञान ॥
 लोभ पाप का बाप बखानो ।
 आशा पाश महादुख दानी, सो पावे संतोषी प्राणी ।
 मक्खी गुड़ में गड़ी रहे, पंख रहे लपटाय ।
 हाथ मले और सिर धुने, लालच बुरी बलाय ॥
 मुट्टी बाँधे आया जग में, हाथ पसारे जायेगा ।

सत्य

सत्य वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर ।
 कर्ण द्वार से संचरे, शोले सकल शरीर ॥
 साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
 जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥
 काने से काना कहो, तुरत हि जाय रुठ ।
 धीरे-धीरे पूँछ लो, कैसे गई है फूट ॥
 शब्द सम्हारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव ।
 एक शब्द अमृत करे, एक हृदय में घाव ॥
 उत्तम सत्य वचन मुख बोले, सो प्राणी संसार न डोले ।
 साँचे साप न लगई, साँचे काल न खाये ।
 साँचे को साँचा मिले, साँचे माहि समाय ॥
 दूध फटा घी कहाँ गया, मन फटा गई प्रीत ।
 मोती फटा कीमत गई, तीनों की एक ही रीत ॥
 कागा काको धन हरे, कोयल काको देय ।
 मीठे शब्द सुनायके, जग अपनो कर लेय ॥
 गोली से बोली बुरी, जो दिल में लग जाये ।
 गोली तो सहले मनुष्य, बोली सही न जाये ॥

संयम

उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै ले साता ।
काय छहों प्रतिपाल, पञ्चेन्द्रिय मन वश करो ।
संयम रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत है ॥
माया ठगनी न ठगी, ठगया सारा संसार ।
जिसने माया को ठगा, उनकी जय जयकार ॥
नीचा झाक्या गुण घणा, पड़ी वस्तु मिल जाये ।
ठोकर भी लागे नहीं, जीव जन्तु बच जायें ॥
ऐसी वाणी बोलिये, कोई न कहे झूठ ।
ऐसी जगह न बैठिये, कोई न कह उठ ॥
मधुर वचन हैं औषधि, कटु वचन हैं तीर ।
श्रवण द्वार से संचरे, साले सकल शरीर ॥
बोलो कम, सुनो अधिक, ये है पर विवेक ।
इसलिए विधि ने दिये, दोय कान मुख एक ॥
शब्द सम्हारै बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव ।
एक शब्द करे औषधि, एक शब्द करे घाव ॥
ऊँचे गिरि से जो गिरे, मरे एक ही बार ।
जो संयम गिरि गिरे, बिगड़े जनम हजार ॥
रहिमन जिहवा बावरी, कह गई सुरग पताल ।
आप तो कह भीतर गई, जूती खात कपाल ॥
अलि पतंग मृग मीन गज, इन्हें एक ही आँच ।
तुलसी ताकि कौन गति, जाके पीछे पाँच ॥
जिस बिना नहीं जिनराज सीझे तू रूल्यां जग कीच में ।
इक धरी मत विसरो करो नित आव जम मुख बीच में ॥
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि यह सिख आदरों ।
जब लो न रोग जरा गहे तब लो झटिति निज हित करो ॥

तप

उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर काम शत्रु को टालै ।
मन मरा माया मरी, मर-मर जाये शरीर ।
तो भी तृष्णा न मरी, कह गये दास कबीर ।।
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय ते तप आदरे ।
नरभव अनूपम कनक घर पर मणिमयी कलशा धरें ।।
दोई पंथ पंथी चले न पंथा, दोइ मुख सुई सिले न कंधा ।
दोई काम साथ न होत सयाने, विषय भोग अरु मोक्ष पयाने ।।
संवर सहित करो तप प्राणी, मिले मुक्ति रानी ।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी ।।
करते खाते दिन गये, सोत बिताई रात ।
मरना सबका निश्चित है, मरने के दिन सात ।।
ज्यों पत्थर में स्वर्ण है, ज्यों चमक में आग ।
उसी तरह यह सत्य है, पड़ा रहे सब ठाठ ।।
काय पाय करि तप नहीं कीना, आगम पड़ नहीं मिटी कसाय ।
धन को पाय दान नहीं कीना, कौन काम तुम कीना भाय ।।

त्याग

दिया पानी जो बादल ने, तो ऊँचा हो गया बादल ।
लिया पानी जो सागर ने, तो नीचे हो गया सागर ।
करुणा हिरदैँ राखिये, हिंसा देहु निकार ।
त्याग धरम इस जीव का, तब होगा साकार ।
न्याय से है जो कमाया, उसमें ही संतोष धर ।
साथ वह भी छोड़ देगा, श्रेष्ठ है कि दान कर ।
नारी कहे सोम सो, काहे वदन मलीन ।
का कछु तेरो गिर गयो, का काहू को दीन ।

नारी सुनो न कछु गिर गयो न काहू को दीन ।
 देवत देखो और को तासो बदन मलीन ।
 इस धरा का इस धरा पर सब धरा रह जायेगा ।
 बांधकर मुट्ठी आया कर पसारे जाएगा ।
 जब वसन्त याचक भये, तज दीने तरु पात ।
 याते नवपल्लव भये दिया व्यर्थ नहीं जात ।
 धन दिये धन न घटे, नदी ना छूटे नीर ।
 अपनी आँखों देख लो, यों क्या कहे कबीर ।
 दान देय मन हरष विषेखे, इह भव जस परभव सुख देखे ।
 निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया ।
 उत्तम त्याग करे जो कोई, भोग भूमि सुर शिव सुख होई ।

आर्किचन

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
 यूँ कबहु इस जीव को, साथी सगा न कोय ।
 पानी बाड़े नावस में, घर में बाड़े दाम ।
 दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ।
 आँख खुली सपना गया, आँख मिची अपना गया ।
 नश्वर है संसार ये सब, आँख मिची दफना गया ।
 परिग्रह चौबीस भेद त्याग करे मुनिराज जी ।
 तृष्णा भाव उछेद घटती जान घटाइये ।
 उत्तम आर्किचन व्रत धारै, परम समाधि दशा विसतारै ।
 फांस तनक सी तन में साले, चाह लगौंटी की दुख भाले ।

ब्रह्मचर्य

उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुक्ति फल पावै ।
कंकड़ पत्थर जो चुने, तिन्हें सतावे काम ।
षट्‌रस भोजन जो भखें, तिनकी जाने राम ।
अंदर विषय-वासना वर्ते, ऊपर लोकलाज भयकारी ।
ताते परम दिगम्बर मुद्रा, सके नहीं दीन संसारी ।
पड़े काम के फेर में, बिगड़े काम तमाम ।
दाम गया बल भी गया, नाम हुआ बदनाम ।
नींद देखे न टूटी खाट, भूख देखे न झूठा भात ।
प्यास देखे न धोबी घाट, काम देखे न जात-कुजात ।

